



इन्दिरा गांधी

राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

मानविकी विद्यापीठ

MHD-09

कहानी : स्वरूप और विकास

खंड

1

कहानी के सिद्धान्त और स्वरूप

इकाई 1

कथा और आख्यान के विभिन्न रूप 7

इकाई 2

कहानी का अर्थ और स्वरूप 20

इकाई 3

कहानी और अन्य गद्य विधाएँ 36

इकाई 4

हिन्दी कहानी का उद्भव 50

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
भारतीय भाषा केन्द्र जे.एन.यू., नई दिल्ली
प्रो. रामदेव शुक्ल
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
दी.द.उ.गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
प्रो. लक्ष्मण सिंह बिष्ट बटरोही
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल
प्रो. जवरीमल्ल पारख
प्रोफेसर, हिन्दी, मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. गोपाल राय
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना
श्री ज्ञानरंजन
प्रख्यात कथाकार और संपादक
जबलपुर, मध्य प्रदेश
डॉ. विजय बहादुर सिंह
प्रख्यात आलोचक
भोपाल, मध्य प्रदेश
डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम संयोजक

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

खंड संयोजन, संशोधन एवं संपादन

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक
प्रो. गोपाल राय
अवकाश प्राप्त अध्यक्ष
हिन्दी विभाग,
पटना विश्वविद्यालय, पटना

इकाई सं.
1-4

विशेष सहयोग : सुश्री नमिता सत्येन
सहयोग : श्री अरुण कुमार पाण्डेय, सुश्री निवेदिता,
श्री शंभुनाथ मिश्र, सुश्री लकी चौधरी
सचिवालयिक सहयोग : सुश्री हेमलता

सामग्री निर्माण

श्री सी.एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)

अप्रैल, 2015

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2015

ISBN: 978-81-266-6858-8

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सुनैना कुमार, निदेशक, मानविकी विद्यापीठ द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

Paper Used : “Agro based Environment Friendly”

लेजर टाइप सेटिंग : एच. डी. कम्प्यूटर क्रॉफ्ट, डब्लू जैड 36ए, लाजवंती गार्डन, नई दिल्ली 110046

मुद्रक : राज प्रिंटर्स, ए-9, सैक्टर बी-2, ट्रॉनिका सिटी, लोनी, गाजियाबाद (उ. प्र.)

पाठ्यक्रम का परिचय

एम.ए. द्वितीय वर्ष के विद्यार्थी के रूप में अब आप 16 क्रेडिट का 4 पाठ्यक्रमों का कहानी संबंधित माड्यूलर पढ़ रहे हैं। 'कहानी : स्वरूप और विकास' (एम.एच.डी.-9) इन चारों पाठ्यक्रमों में पहला पाठ्यक्रम है। यह पाठ्यक्रम 5 खंडों और 20 इकाइयों में विभाजित है। इस माड्यूलर का प्रत्येक पाठ्यक्रम 4 क्रेडिट का है।

इस पाठ्यक्रम में कहानी के सैद्धांतिक पक्ष की चर्चा की गई है। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य विद्यार्थियों में कहानी संबंधी सैद्धांतिकी की समझ बढ़ाना है। इस पाठ्यक्रम में विद्यार्थी कथा और आख्यान के विभिन्न रूपों का अध्ययन करने के साथ ही कहानी के अर्थ और स्वरूप का भी अध्ययन करेंगे। यह पाठ्यक्रम कहानी विधा के विकास के साथ ही हिन्दी कहानी के विकास पर भी विस्तृत प्रकाश डालता है। कथा आलोचना में वस्तु और शिल्प का विवाद बहुत पुराना है। इस पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों को वस्तु और शिल्प के विषय में पर्याप्त जानकारी दी गई है। इसके अतिरिक्त इसमें कहानी की भाषिक संरचना और उसके वर्गीकरण के औचित्य पर जो विचार किया गया है वह कहानी संबंधी समझ को और स्पष्ट करता है।

कहानी संबंधी सैद्धांतिकी की चर्चा करते हुए इस पाठ्यक्रम में कहानी आलोचना की परंपरा को भी रेखांकित किया गया है। चूँकि कहानी का संबंध पूरे संसार से है इसलिए एक पूरा खंड विश्व साहित्य में कहानी पर केंद्रित है। इसका उद्देश्य यह है कि हिन्दी के विद्यार्थी कहानी के वैश्विक परिदृश्य से परिचित हो सकें। इसी प्रकार एक पूरा खंड भारतीय साहित्य में कहानी पर केंद्रित है और इसका भी उद्देश्य हिन्दी के विद्यार्थियों का भारतीय कहानी से विधिवत परिचय कराना है। जब विद्यार्थी कहानी के भारतीय और वैश्विक परिदृश्य से परिचित होंगे तो उनके लिए हिन्दी कहानी के विकास को समझना अपेक्षाकृत आसान होगा। इस पाठ्यक्रम का अंतिम खंड हिन्दी साहित्य में कहानी के विकास को रेखांकित करता है। इस खंड में प्रेमचंद पूर्व, प्रेमचंद कालीन, प्रेमचंदोत्तर, नई कहानी, साठोत्तरी कहानी और समकालीन कहानी पर विचार किया गया है। इस पाठ्यक्रम का विस्तृत विवरण इस प्रकार है –

खण्ड –1 कहानी के सिद्धान्त और स्वरूप –1

- इकाई – 1 कथा और आख्यान के विभिन्न रूप
- इकाई – 2 कहानी का अर्थ और स्वरूप
- इकाई – 3 कहानी और अन्य गद्य विधाएँ
- इकाई – 4 हिन्दी कहानी का उद्भव

खण्ड – 2 कहानी के सिद्धांत और स्वरूप –2

- इकाई – 5 कहानी में वस्तु और शिल्प
- इकाई – 6 कहानी की भाषिक संरचना
- इकाई – 7 कहानी का वर्गीकरण औचित्य और सीमाएं
- इकाई – 8 कहानी की आलोचना की परंपरा

खण्ड – 3 विश्व साहित्य में कहानी

- इकाई – 9 यूरोप में कहानी
- इकाई – 10 अमेरिका में कहानी

- इकाई — 11 एशिया में कहानी
इकाई — 12 लैटिन अमेरिकी और अफ्रीकी देशों में कहानी
खण्ड — 4 भारतीय साहित्य में कहानी
इकाई — 13 भारत में कथा—कहानी
इकाई — 14 नवजागरण काल में भारतीय कहानी
इकाई — 15 राष्ट्रीय आंदोलन के दौर में भारतीय कहानी
इकाई — 16 स्वतंत्रता के बाद भारतीय कहानी का विकास
खण्ड — 5 हिन्दी साहित्य में कहानी
इकाई — 17 प्रेमचंद पूर्व और प्रेमचंद कालीन हिन्दी कहानी
इकाई — 18 प्रेमचंदोत्तर हिन्दी कहानी
इकाई — 19 नयी कहानी और साठोत्तरी कहानी
इकाई — 20 समकालीन हिन्दी कहानी

हम चाहते हैं, हमारे विद्यार्थी हिन्दी कहानी के साथ—साथ भारतीय भाषाओं की कहानियों और विश्व कहानी से भी परिचित हो सकें। इस पाठ्यक्रम को तैयार करने का उद्देश्य भी यही है। हमें उम्मीद है, इन इकाइयों के अध्ययन के पश्चात आप कहानी के सैद्धांतिक पक्षों को समझने के साथ ही कहानी के वैश्विक परिदृश्य से भी परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।

शुभकामनाओं सहित।



खण्ड-1 परिचय

यह कहानी संबंधी माड्यूलर के पहले पाठ्यक्रम 'कहानी : स्वरूप और विकास' का पहला खण्ड है। इस खण्ड का शीर्षक है— कहानी के सिद्धान्त और स्वरूप-1। इस खण्ड में कुल चार इकाइयाँ हैं जो इस प्रकार हैं —

- इकाई — 1 कथा और आख्यान के विभिन्न रूप
- इकाई — 2 कहानी का अर्थ और स्वरूप
- इकाई — 3 कहानी और अन्य गद्य—विधाएँ
- इकाई — 4 हिन्दी कहानी का उद्भव

इस खण्ड को तैयार करने का उद्देश्य विद्यार्थियों को कहानी संबंधी मूल अवधारणाओं से परिचित कराना है। इस खण्ड की पहली इकाई में आप कथा और आख्यान के विभिन्न रूपों का अध्ययन करेंगे। इससे आपको कहानी विधा की पृष्ठभूमि का ठीक-ठीक परिचय मिल सकेगा।

इस खण्ड की दूसरी इकाई का शीर्षक है —कहानी का अर्थ और स्वरूप। इस इकाई में कहानी का अर्थ बताने के साथ-साथ उसके स्वरूप पर भी प्रकाश डाला गया है। खण्ड की तीसरी इकाई में कहानी और अन्य गद्य विधाओं के विधागत अंतर का रेखांकन है। इन तीन इकाइयों के अध्ययन के पश्चात अब आप चौथी इकाई में हिन्दी कहानी के उदय के कारणों का अध्ययन करेंगे। इस इकाई का अध्ययन करते हुए आप जान सकेंगे कि हिन्दी कहानी के उदय में किन कारकों ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

हमें विश्वास है, इस खंड के अध्ययन के पश्चात आप कहानी संबंधी सैद्धांतिकी की कुछ मूलभूत बातों को समझ सकेंगे/सकेंगी। इस पाठ्यक्रम के दूसरे खंड में हम कहानी संबंधी कुछ अन्य प्रश्नों पर विचार करेंगे।

शुभकामनाओं सहित।



इकाई 1 कथा और आख्यान के विभिन्न रूप

इकाई की रूपरेखा

- 1.0 उद्देश्य
- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 'कथा' और 'आख्यान' का अर्थ, परस्पर सम्बन्ध और विविध रूप
 - 1.2.1 'कथा' और 'आख्यान' का अर्थ
 - 1.2.2 'कथा' का मूल स्वरूप
 - 1.2.3 'कथा' की प्राचीनता
 - 1.2.4 'कथा' का मूल उद्देश्य
- 1.3 कथा का मौखिक रूप—लिखित परम्परा का आरम्भ
 - 1.3.1 महाभारत
 - 1.3.2 'बड्डकहा' ('बृहदकथा')
- 1.4 "आख्यान" की प्राचीन अवधारणा और उसके विभिन्न रूप
- 1.5 "कथा" की नयी अवधारणा
 - 1.5.1 सुबन्धु कृत 'वासवदत्ता'
 - 1.5.2 कादम्बरी
 - 1.5.3 हर्षचरित
 - 1.5.4 दशकुमारचरित
 - 1.5.5 कथा-रचना की भारतीय परम्परा का अवसान
- 1.6 सारांश
अभ्यास

1.0 उद्देश्य

एम. ए. हिन्दी के द्वितीय वर्ष के कहानी से सम्बन्धित माड्यूल के पाठ्यक्रम 'कहानी : स्वरूप और विकास' से सम्बन्धित खंड-1 की यह पहली इकाई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- 'कथा' और 'आख्यान' के विभिन्न रूपों तथा उनके परस्पर सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।
- 'कथा' के मूल अर्थ और स्वरूप की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।
- 'कथा' की प्राचीनता से अवगत हो सकेंगे/सकेंगी।
- 'कथा' के मौखिक और लिखित रूपों के विकास से परिचय प्राप्त कर सकेंगी/सकेंगे।

- 'कथा' की प्राचीन अवधारणा और उसके विकास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगी/सकेंगे।
- 'कथा' की नयी अवधारणा से परिचित हो सकेंगी/सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई से हम इस पाठ्यक्रम की शुरुआत करने जा रहे हैं। 'कहानी' के स्वरूप को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए उसके मूल रूप 'कथा' से परिचित होना आवश्यक है। इसी बात को ध्यान में रख कर यह इकाई लिखी गयी है। इकाई के दूसरे भाग और अनुभागों में 'कथा' और 'आख्यान' के सम्बन्ध का निरूपण किया गया है। पहले व्युत्पत्ति की दृष्टि से दोनों के मूल स्वरूप का संकेत किया गया है। तत्पश्चात् कथा के मूल स्वरूप का विवेचन किया गया है। तदनन्तर सातवीं सदी में 'कथा' और 'आख्यायिका' के अर्थ-निरूपण में आए परिवर्तन पर विचार किया गया है। इकाई के अन्त में पूरे विवेचन का सारांश दिया गया है और अन्त में अभ्यास हेतु प्रश्न दिये गये हैं।

1.2 'कथा' और 'आख्यान' का अर्थ, परस्पर सम्बन्ध और विविध रूप

1.2.1 'कथा' और 'आख्यान' का अर्थ

आइए, पहले हम 'कथा' और 'आख्यान' के अर्थ और उनके सम्बन्ध पर विचार करें। अर्थ की दृष्टि से ये पर्यायवाची शब्द हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'कथा' संस्कृत की 'कथ्' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'कथन' या 'वर्णन' करना होता है। 'आख्या' के मूल में 'ख्या' धातु है, जिसका अर्थ भी 'विवरण', 'व्याख्या' 'कहना' या 'वर्णन करना' ही होता है। यह 'अति प्रसिद्ध' अर्थ में भी प्रयुक्त होता है।

1.2.2 'कथा' का मूल स्वरूप

'कथा' की मूल प्रकृति और पहचान को भी सुनिश्चित करना आवश्यक है। यदि हम बचपन में सुनी कथाओं पर ध्यान दें तो उनमें तीन बातें प्रमुख होती हैं। इन्हें हम 'तत्त्व' की संज्ञा दे सकते हैं। ये तत्त्व हैं 'घटनाएँ', उनका 'समयानुक्रम' और 'दिक्' में आबद्ध होना तथा निरन्तर औत्सुक्य का सृजन। 'घटना' को भी परिभाषित करना आवश्यक है। जो 'घटित' होता है वह 'घटना' है। 'घट' से 'घटित' शब्द बना है, जिसमें निर्मिति का भी भाव है। 'घटना' में आकस्मिकता, संयोग और अप्रत्याशित होने के तत्त्व होते हैं। उदाहरण के लिए भूकम्प, वायु-दुर्घटना या दो देशों के बीच युद्ध छिड़ जाना। घटनाएँ सुखद भी हो सकती हैं ; जैसे किसी का खोया पुत्र अचानक मिल जाना, किसी दरिद्र के नाम लॉटरी निकल आना, वायुयान-दुर्घटना में किसी का बच जाना या किसी देश का लम्बी गुलामी के बाद स्वतन्त्र हो जाना, आदि। कथा में नियोजित घटनाओं का कुतूहलवर्धक होना भी कथा के लिए जरूरी है। अन्यथा श्रोता में कथा सुनने की रुचि ही नहीं रह पाएगी। मनुष्य के जीवन में 'घटनाएँ' भी घटती हैं, पर वे विरल होती हैं, कभी कभी घटती हैं। जीवन में प्रमुखता 'कार्यव्यापारों' की होती है, 'घटनाओं' की नहीं। सारा जीवन, सुबह से शाम तक, आदमी कर्म-व्यस्त रहता है। 'कार्य-व्यापार' सुपरिचित, प्रत्याशित, सहज और जीने-मरने के लिए जरूरी होता है। कर्म-व्यस्तता ही जिन्दगी है। घटनाएँ तो समुद्र-यात्रा में आ जानेवाले तूफान की तरह हैं।

पर 'कथा' में 'घटनाओं' की ही प्रमुखता होती है, जीवन के सामान्य कार्य-व्यापार गौण होते हैं। कथा में सामान्य व्यापार नहीं होते, यह तो नहीं कहा जा सकता, पर श्रोता के लिए वे कोई महत्त्व नहीं रखते। वे केवल 'घटनाओं' को जोड़ने का काम करते हैं। श्रोता उन्हें सुनते हुए भी प्रतीक्षा 'घटनाओं' की ही करता रहता है। ये घटनाएँ समय के अनुक्रम में गुँथी होती हैं। समय का एक ऐतिहासिक क्रम होता है जो घड़ी की टिकटिक या कैलेंडर के पृष्ठों द्वारा निर्धारित होता है। यह समय-क्रम आदमी के जन्म लेने से मृत्यु की दिशा में चलता है, या विभिन्न संवत् गणनाओं में एक से अनन्त की ओर अग्रसर होता है। इस काल-गणना में पृथ्वी अपनी धुरी या अपनी सौर-परिधि पर एक बार चक्कर लगा लेती है, जिसे हम चौबीस घंटे या वर्ष के रूप में जानते हैं। घंटा को पुनः मिनटों और सेकेंडों में विभाजित किया जाता है। वर्षों की गणना भी 'दशक', 'शताब्दी', 'सहस्राब्दी' आदि रूपों में की जाती है। इसी 'ऐतिहासिक' या प्राकृतिक कालक्रम में गुँथी घटनाओं का नाम 'कथा' है।

'काल' की तरह 'दिक्' या 'स्पेस' भी कथा के लिए जरूरी होता है। घटनाएँ 'दिक्' में ही घटित हो सकती हैं। पर 'कथा' का 'दिक्' मानव अनुभव की सीमाओं को स्वीकार नहीं करता। बच्चों की कथाओं में हमारी पृथ्वी के जाने पहचाने स्थान ही नहीं, अनजानी जगहें भी, यहाँ तक कि ब्रह्मांड के कल्पित लोक भी, घटना-स्थल के रूप में आती हैं। पर उनकी कोई पहचान नहीं होती। वे प्रायः मनुष्य के अनुभव जगत् के परे की जगहें होती हैं, शुद्ध रूप से कल्पनाप्रसूत। श्रोता की उनके बारे में कोई जिज्ञासा भी नहीं होती। 'कथा' में दिक् की अनिवार्यता होते हुए भी श्रोता के लिए उसका महत्त्व अधिक नहीं होता।

'कथा' के लिए जरूरी है कि 'घटनाएँ' कौतूहल पैदा करने वाली हों। उनमें आकस्मिक और अप्रत्याशित होने के साथ साथ नवीनता भी अपेक्षित होती है। कौतूहल बनाए रखने के लिए यह जरूरी है। यदि एक ही घटना बार बार दोहरायी जाए तो 'कथा' नहीं बनेगी। उनका सतत 'नया' होते रहना जरूरी है। कथा में कहने और सुननेवाले की एक साथ उपस्थिति भी आवश्यक है। इसीलिए 'कथा' की एक पहचान उसका 'मौखिक' होना भी है। जरूरी है कि श्रोता की आँखों में 'फिर क्या हुआ?' का भाव बना रहे और यदि श्रावयिता (सुनाने वाला) किसी कारण चुप हो जाए तो श्रोता उसे टोक दे, 'फिर क्या हुआ' का अनुरोध कर बैठे। यदि घटना स्वयं में आश्चर्यचकित और बाद की घटना के प्रति कुतूहल पैदा करनेवाली नहीं है तो 'कथा' भी बेकार है। घटनाओं की श्रृंखला में कोई भी कड़ी सुपरिचित और सामान्य घटना के रूप में नहीं हो सकती, क्योंकि वहाँ कथा अरोचक हो जाएगी। जब घटनाएँ समाप्त हो जाती हैं तो 'कथा' भी समाप्त हो जाती है।

1.2.3 'कथा' की प्राचीनता

मौखिक रूप में 'कथा' कितनी प्राचीन है, इसका कोई इतिहास उपलब्ध नहीं है। यह अत्यन्त प्राचीन है। इसका अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि आज भी यह मनुष्य की सहज और जन्मजात प्रवृत्ति से जुड़ी हुई है। कदाचित् मनुष्य के जन्म के साथ ही कथा का भी जन्म हो गया था। नृत्यशास्त्रियों ने आदिम मानवों की प्राप्त खोपड़ियों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला है कि पुरापाषाण युग का मनुष्य कथा कहने-सुनने लगा था। सम्भवतः दिन भर शिकार करने के बाद रात को जब वे विश्राम के निमित्त हिंस्र पशुओं से बचाव के लिए चारों तरफ आग का जलता हुआ घेरा बना कर समूह में बैठते होंगे तो उनके दिन भर के शिकार के अनुभवों के रूप में कथा का जन्म हुआ होगा। शनैः

शनैः उसमें कल्पना भी मिश्रित होने लगी होगी और कभी ऐसा भी समय आया होगा जब शिशुओं का मनोरंजन करने के लिए वास्तविक अनुभव की कोई आवश्यकता ही न रह गयी होगी। कोई बूढ़ा आदिमानव बिना शिकार में गए अपने पूर्व अनुभवों और कल्पना की सहायता से नयी नयी कथा गढ़ लेने में महारत हो जाता रहा हो और इस प्रकार 'कथा' कहने की कला का विकास हो गया हो। यद्यपि है यह अनुमान ही, पर कथा का जन्म जरूर ही कुछ ऐसी ही परिस्थितियों में हुआ होगा।

1.2.4 'कथा' का मूल उद्देश्य

अनुमानतः कथा पहले मनोरंजन का ही काम करती होगी। पर धीरे धीरे उसका उपयोग उपदेश देने या 'मूल्यों' की अभिव्यक्ति के लिए किया जाने लगा होगा। वैदिक काल से ही कथा का उपयोग इस काम के लिए होता रहा है। कथा को उपदेश का माध्यम बनाने का एक बढ़िया उदाहरण पं. विष्णु शर्मा द्वारा रचित 'पंचतन्त्र' है, जिसकी रचना पहली शताब्दी ईसवी के आसपास हुई थी। पंचतन्त्र की रचना एक राजा के 'जड़ बुद्धि', 'अविनीत, उच्छृंखल और मूर्ख' राजकुमारों को 'राजनीति और व्यवहार-नीति' की शिक्षा देने के लिए हुई थी। यह भी कथाओं का संकलन ही है। यह पाँच प्रकरणों में विभक्त है। प्रत्येक प्रकरण में परस्परगुम्फित अनेक कहानियाँ हैं, जो एक ही विषय का प्रतिपादन करती हैं। इसकी एक विशेषता यह है कि यह पशु-पक्षियों की कथा है। इस कथा के पशु-पक्षी मनुष्य की तरह आचरण करते हैं और भाषा भी मनुष्य की ही बोलते हैं। बाल-मन इसमें कोई असंगति नहीं देखता, क्योंकि वह 'कथा' में यह नहीं पूछता कि 'ऐसा कैसे हुआ?' ; बल्कि यह पूछता है कि 'फिर क्या हुआ?' अविश्वास बाल-मन में नहीं होता। शुद्ध कथा-श्रोता की भी यही विशेषता होती है। 'कार्य-कारण' सम्बन्ध की दृष्टि से पंचतन्त्र की कथाओं में असंगतियाँ भरी हुई हैं। कौतूहल का तत्त्व ही कथा को आगे बढ़ाता है। पर उसकी प्रत्येक कथा किसी न किसी प्रयोजन से निर्मित है। उसमें कथा गौण है, प्रयोजन ही प्रधान है। यह भी कथा के विकास का एक चरण है, जो वर्णन की सर्जनात्मकता के समानान्तर अग्रसर हुआ है। एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि पंचतन्त्र में भाषिक सर्जनात्मकता पैदा करने की कोई कोशिश नहीं दिखाई पड़ती। कारण यह है कि यह केवल बच्चों के लिए निर्मित है, जिनकी भाषिक सर्जनात्मकता में कोई रुचि नहीं होती। 'पंचतन्त्र' से पहले संकलित जातक कथाओं में कथा सुनाने वाले स्वयं भगवान बुद्ध हैं और श्रोता भिक्षु-गण। ये सारी कथाएँ अलग अलग हैं। पंचतन्त्र की कथाओं के मुख्य कथक विष्णुशर्मा और श्रोता राजकुमार हैं। घटनाएँ इतनी रोचक हैं कि राजकुमार आगे की कथा सुनने के अपने कुतूहल को रोक नहीं पाते। केन्द्रीय कथा किसी पशु या पक्षी समुदाय की होती है, जिसके पात्रों को कथक बना कर परत-दर-परत अन्य कथाएँ सुनायी जाती हैं। उपदेशों में बालकों की रुचि बिलकुल नहीं है और विष्णु शर्मा इसे अच्छी तरह जानते हैं। वे पशु-पक्षियों से सम्बद्ध कथाओं को कुतूहल से भर देने की कला में माहिर हैं। पर इसके साथ ही वे उनमें 'शिक्षा' के तत्त्व भर देने की कला में भी निष्णात हैं। छह महीने बीतते बीतते कथा तो समाप्त हो जाती है, पर राजनीति के उपदेश राजकुमारों के मन पर अंकित हो जाते हैं। 'कथाकार' को 'कथा' की उपयोगिता का पता चल जाता है। कथा के परवर्ती विकास में 'कथाकार' के इस ज्ञान का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

1.3 कथा का मौखिक रूप—लिखित परम्परा का आरम्भ

कथा की लिखित परम्परा का आरम्भ कब हुआ इसका कोई निश्चित और प्रामाणिक

विवरण उपलब्ध नहीं है। वेद, उपनिषद् और पुराण स्मृति-परम्परा में आते हैं, अतः उनमें आयी कथाएँ भी कहने-सुनने की परम्परा में ही आएँगी। वाल्मीकि रचित 'रामायण' भी कदाचित् इसी परम्परा में आएगी, क्योंकि लवकुश द्वारा उसे राजा राम के दरबार में सुनाये जाने का ही उल्लेख मिलता है। सम्भवतः 'महाभारत' पहली लिखित कथा या आख्यान है।

1.3.1 महाभारत

'महाभारत' का रचना-काल ई.पू. सन् 800-100 माना जाता है। इसका पहला पाठ 'जय' ई.पू. 800 में, दूसरा पाठ 'भारत' ई.पू. 500 में और तीसरा पाठ 'महाभारत' ई.पू. 200-100 में रचा गया था। लोमहर्षण-पुत्र उग्रश्रवा सौति पुराणों के विद्वान और कथावाचक थे। उग्रश्रवा ने नैमिषारण्य में कुलपति महर्षि शौनक के बारह वर्षों तक जारी यज्ञ-सत्र में उपस्थित ब्रह्मर्षियों को यह कथा सुनायी थी। उन्होंने स्वयं यह कथा महर्षि वैशम्पायन से सुनी थी। जनमेजय के सर्प यज्ञ में वैशम्पायन ने श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास द्वारा निर्मित महाभारत की कथा सुनायी थी। उग्रश्रवा जी के अनुसार महाभारत की रचना करके व्यास जी यह विचार करने लगे कि अब शिष्यों को इस ग्रन्थ का अध्ययन कैसे कराऊँ। जन में इसका प्रचार कैसे हो? व्यास जी का यह विचार जानकर ब्रह्मा जी उनके आश्रम पधारे। व्यास जी ने ब्रह्मा जी से अपने महाकाव्य की रचना की बात बतायी। उन्होंने महाभारत के कथ्य का वर्णन किया। उनके अनुसार इस ग्रन्थ में इतिहास और पुराणों का मन्थन करके उनका प्रशस्त रूप प्रकट किया गया है। भूत, वर्तमान और भविष्य काल की इन तीनों संज्ञाओं का भी वर्णन हुआ है— इतिहासपुराणानामुन्मेषं निर्मितं चशयत्। ब्रह्मा जी ने ही व्यास जी को अपना काव्य लिखवाने के लिए गणेश जी को स्मरण करने को कहा। व्यास जी के स्मरण करते ही गणेश जी वहाँ पहुँच गये। व्यास जी ने उनसे अपने ग्रन्थ का—जिसकी रचना उन्होंने मन ही मन कर ली थी—लेखक बन जाने का आग्रह किया। गणेश जी ने उनका अनुरोध तो स्वीकार कर लिया, पर एक शर्त भी लगा दी। वह शर्त यह थी कि उन्हें अपना ग्रन्थ बिना कहीं रुके लिखाना होगा ! यदि वे कहीं रुक गये तो गणेश जी लिखना छोड़ कर चल देंगे! व्यास जी ने भी एक शर्त रख दी कि आपको श्लोकों का अर्थ समझ कर ही लिखना होगा ! इसी शर्त पर महाभारत लिखा गया। उग्रश्रवा जी के अनुसार इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थों का वर्णन किया गया है। यह भारत इतिहास का जाज्वल्यमान दीपक है। यह मोह का अन्धकार मिटा कर लोगों के अन्तःकरण रूप सम्पूर्ण अन्तरंग गृह को भलीभाँति ज्ञानालोक से प्रकाशित कर देता है।

उग्रश्रवा के अनुसार महर्षि व्यास ने मनुष्यलोक में इस महाभारत का प्रवचन किया। उन्होंने सबसे पहले अपने पुत्र शुकदेव को इस महाभारत ग्रन्थ का अध्ययन कराया। तदनन्तर उन्होंने अन्यान्य शिष्यों को इसका उपदेश किया। देवर्षि नारद ने देवताओं को और असित-देवल ने पितरों को इसका श्रवण कराया। जनमेजय के नागयज्ञ के अवसर पर उसके और हजारों ब्राह्मणों के प्रश्न करने पर व्यास जी ने पास ही बैठे अपने शिष्य वैशम्पायन को आज्ञा दी कि तुम इन लोगों को महाभारत सुनाओ।

इस कथा से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि महाभारत की रचना तो श्रुति परम्परा में ही हुई थी, पर उसके व्यापक प्रचार के लिए स्वयं उसके रचयिता महर्षि व्यास ने ही उसे लिखित रूप देने में गणेश जी की सहायता ली। उसके बाद वह 'वाचन परम्परा' की वस्तु बन गयी जिसमें लिखित कथा श्रोताओं को सुनायी जाती है।

1.3.2 'बड़कहा' ('बृहदकथा')

'बड़कहा' ('बृहदकथा') के बारे में भी कहा गया है कि प्रथमतः भगवान शिव ने पार्वती को यह कथा सुनायी थी। फिर गुणादय ने इस कथा को सात लाख श्लोकों में, पैशाची प्राकृत में, लिखित रूप दिया। तत्पश्चात् राजा सातवाहन ने इसके नष्ट होने से बच रहे एक लाख श्लोकों का अनुवाद अपनी भाषा में (सम्भवतः संस्कृत में) कराया, जिसके संस्कृत और प्राकृत में कई अनुवाद हुए। पुराणों के अनुसार राजा सातवाहन, अतएव गुणादय, का समय ई.पू. 495—490 ई. है। अन्ततः ग्यारहवीं सदी ईसवी में 'कथासरित्सागर' के रूप में इसका वह पाठ निर्मित हुआ जो आज उपलब्ध है।

1.4 'आख्यान' की प्राचीन अवधारणा और उसके विभिन्न रूप

जैसा पहले ही कहा जा चुका है, 'कथा' और 'आख्यान' अपने मूल अर्थ में एक-दूसरे से अभिन्न हैं। 'आख्यान' शब्द का अर्थ होता है, कथन, निवेदन आदि ; कथा—कहानी तथा प्रतिवचन या उत्तर। विद्वानों के अनुसार आख्यान वैदिक सुपर्ण और मैत्रावरुण आदि से सम्बद्ध कथा का ही नामान्तर है। परम्परा से महाभारत आदि इतिहास ग्रन्थ भी आख्यान काव्य के रूप में मान्य हैं। बाद में 'काव्य शास्त्र' में भामह ने कुछ भेदक तथ्यों का उल्लेख करते हुए गद्यकाव्य के दो भेद तय किये—'कथा' और 'आख्यायिका'। पहले की कथाएँ कल्पित हैं और दूसरे की ऐतिहासिक। दण्डी ने इसका विरोध करते हुए कहा कि ये भेदक तत्त्व किञ्चित्कर हैं। वस्तुतः ये सब एक ही जाति के हैं और इस जाति का नाम है 'आख्यान'। दण्डी के समय में आख्यान एक जातिवाचक शब्द था। अनेक आख्यानों और उपाख्यानों का संकलन होने के कारण ही रामायण और महाभारत को भी आख्यान की संज्ञा मिली है। 'पंचतन्त्र', 'हितोपदेश', 'कथासरित्सागर' आदि 'उपाख्यानों' के संग्रह माने जाते हैं।

1.5 'कथा' की नयी अवधारणा

आचार्यों द्वारा निरूपित 'कथा' के उदाहरण के रूप में सुबन्धु की 'वासवदत्ता', बाणभट्ट की 'कादम्बरी' और दंडी का 'दशकुमारचरित' आते हैं। बाणभट्ट रचित 'हर्षचरित' को 'आख्यायिका' कहा गया है।

1.5.1 सुबन्धु कृत 'वासवदत्ता'

'रोमांस' का विकास यूरोप में भले ही बाद की घटना हो, भारत में उसका विकास 'बृहत्कथा' से ही माना जा सकता है। बृहत्कथा की कथाएँ यूरोपीय 'रोमांस' की सारी विशेषताओं से युक्त हैं। 'प्रेम' और 'साहसाभियान' रोमांस की पहचान निश्चित करने वाले प्रमुख तत्त्व हैं। घटनाओं का जाल तो इनमें होता ही है, अतिलौकिक घटनाओं की भी बहुलता होती है। बृहत्कथा में ये सारे गुण हैं। कोई कमी है तो किसी एकल कथा की। यह कमी ई. सन् 500 या उसके कुछ पूर्व विद्यमान सुबन्धु की वासवदत्ता द्वारा पूरी होती है। पर वासवदत्ता की कथा आकार में भले ही 'पर्याप्त लम्बी' या एक पूरी पुस्तक को निर्मित करने वाली हो, खुद में वह बहुत क्षीण है। बृहदकथा की कोई भी कहानी 'कथा' की दृष्टि से उससे कहीं ज्यादा ठोस है। वस्तुतः सुबन्धु का सारा जोर कथा के पात्रों और उनके परिवेश के, अपने काल के काव्यरसिकों की रुचि के अनुरूप 'काव्यगुणों' से सम्पन्न, सविस्तार वर्णनों पर है। सुबन्धु को केवल इस बात का श्रेय दिया जा सकता है कि

उन्होंने गुणादय की तरह अपनी कथा पद्य में न प्रस्तुत कर गद्य में प्रस्तुत की और कथा को उन समस्त साहित्यिक विशेषताओं से युक्त कर दिया जिसका एकाधिकार केवल कवियों को प्राप्त था। यह एक तरह का ऐसा प्रयोग था, जिसका साहस किसी अन्य गद्यलेखक ने नहीं किया था। कथ्य की दृष्टि से 'वासवदत्ता' भी एक 'रोमांस' ही है, जिसमें प्रेम और साहसाभियान की प्रमुखता है। अपने समय का यथार्थ और विश्वास भी इसमें व्यक्त हुए हैं, पर वह श्लेष और नाना प्रकार के अलंकारों के वाग्जाल से इस प्रकार आच्छादित है कि उसकी तरफ प्रायः पाठक का ध्यान नहीं जाता। सम्भवतः वह कवि का उद्देश्य भी नहीं है। संरचना की दृष्टि से भी वासवदत्ता में कोई ऐसा नयापन नहीं है, जो उल्लेखनीय हो।

1.5.2 कादम्बरी

कथा की दृष्टि से 'कादम्बरी' गुणादय की बृहत्कथा की एक कथा—जो कथासरित्सागर में 'मकरन्दिकोपाख्यान' के रूप में उपलब्ध है—पर आधारित है, पर बाणभट्ट ने इस कथासंसार को अपने 'विज्ञान' के अनुरूप बिल्कुल नया रूप दे दिया है। इसका कथाविन्यास अद्भुत रूप से नया और आश्चर्यचकित करनेवाला है। यद्यपि 'कथा के भीतर कथा' की विन्यास—कला गुणादय की बृहत्कथा और विष्णु शर्मा के पंचतन्त्र में ही विकसित हो चुकी थी पर बाणभट्ट ने पहली बार परस्पर गुँथी कथाओं को कथा की एकल इकाई में परिणत करने में सफलता प्राप्त की थी। कथा का आरम्भ अवन्ती की राजनगरी विदिशा और उसके राजा शूद्रक के ऐश्वर्य-वर्णन से होता है। एक दिन एक चांडाल राजकन्या अपने वृद्ध सेवक के साथ शूद्रक की राजसभा में एक चमत्कारी सुग्गा लेकर आती है। सेवक शूद्रक से सुग्गे के—जिसका नाम वह वैशम्पायन बताता है—गुणों का बखान करता है और राजा से उसे अपनाने का अनुरोध करता है। सुग्गा भी एक आर्या छन्द सुनाकर अपने गुणों का परिचय दे देता है। भोजनादि से निवृत्त होने के बाद शूद्रक सुग्गे से उसकी आत्मकथा सुनने का अनुरोध करता है। बस, शुक की 'आत्मकथा' आरम्भ हो जाती है। यहाँ आकर कथाकार बाणभट्ट कथा का सूत्र शुक को थमा देता है और स्वयं नेपथ्य में चला जाता है। इस प्रसंग को विश्वसनीय बनाने की भी बाणभट्ट ने भरपूर कोशिश की है। बाणभट्ट को इस बात की चिन्ता है कि एक पक्षी की कथा विश्वसनीय भी होनी ही चाहिए। बाणभट्ट के समय में आधुनिक 'यथार्थवाद' का जन्म नहीं हुआ था, और दैवी शक्तियों, जीव के नाना योनियों में पुनर्जन्म, शाप-वरदान, देव-गन्धर्व आदि जातियों की उपस्थिति आदि में लोगों का पूरा विश्वास था। कादम्बरी में भी इस प्रकार के प्रसंग भरे पड़े हैं, पर कथाकार कथा की 'विश्वसनीयता' के प्रति सर्वत्र सजग दिखाई देता है। भारतीय कथा के विकास में यह सर्वथा नयी चीज थी। इसके पहले कथाकार इस बात की चिन्ता नहीं करता था कि 'कथा' विश्वसनीय है या नहीं ; वह मानकर चलता था कि उसका श्रोता 'ऐसा कैसे हो सकता है?' जैसा प्रश्न नहीं कर सकता। वह केवल यह पूछ सकता था कि 'इसके बाद क्या हुआ?' पर बाणभट्ट का श्रोता ऐसा नहीं है। अतः कथाकार शुक के द्वारा कही गया कथा के 'विश्वसनीय' होने का तर्क प्रस्तुत करता है। पर, जब शुक की कथा एक ऐसे बिन्दु पर पहुँचती है जब वह उसके आगे की कथा जानने की स्थिति में नहीं होता तो कथाकार बड़ी चतुराई से कथा के अवलोकन-बिन्दु में परिवर्तन कर देता है ; वह एक ऐसे पात्र को कथक के रूप में प्रस्तुत कर देता है जो शुक की कथा का विश्वसनीय जानकार हो सकता था। यह पात्र महामुनि जाबालि हैं, जिन्हें भूत-वर्तमान-भविष्य का ज्ञान है। अब कथा दो स्तरों पर सुनी जाने लगती है। शूद्रक और उनका राजसमाज तो शुक से कथा सुन ही रहा है, पर शुक वह कथा सुना रहा है, जिसे उसने जाबालि आश्रम के जिज्ञासु अन्तःवासियों के साथ

महर्षि जाबालि से सुना था। महर्षि जाबालि शुक (वैशम्पायन) के पूर्व जन्म की कथा सुनाते हैं। यह कथा उज्जयिनी के राजा तारापीड़, उसके मन्त्री शुकनास, राजपुत्र चन्द्रापीड़ और मन्त्रिपुत्र वैशम्पायन की है। अपने दिग्विजय-अभियान में चन्द्रापीड़ हेमकूटस्थित किरात-नगरी सुवर्णपुर में पहुँचता है, जहाँ से वह अकेले अच्छोद सरोवर पहुँच जाता है। वहाँ उसकी मुलाकात महाश्वेता से होती है, जो एक गन्धर्वकन्या है। यहाँ पहुँचकर कथा महाश्वेता की आत्मकथा का रूप ले लेती है, जिसका एकल श्रोता चन्द्रापीड़ है। शूद्रक की राजसभा और जाबालि-आश्रम की ऋषिमंडली अपनी जगह पर कथा सुन रही है। शुक और महामुनि जाबालि भी अपने अपने स्थान पर कथा सुना रहे हैं, पर अब कथा महाश्वेता के मुख में प्रवेश कर गयी है और उसका प्रत्यक्ष श्रोता चन्द्रापीड़ बन गया है। महाश्वेता चन्द्रापीड़ को अपनी प्रेमकहानी सुनाती है, जिसका नायक मुनिकुमार पुंडरीक है। अपनी कथा कहते कहते वह संज्ञाहीन भी हो जाती है और कथा कुछ देर के लिए महाश्वेता के अतीत से निकल कर चन्द्रापीड़ के वर्तमान में आ जाती है। संज्ञा प्राप्त करने पर महाश्वेता पुनः अपनी कथा आगे बढ़ाती है। इसके बाद पुनः कथा का सूत्र थोड़ी देर के लिए महर्षि जाबालि के हाथ में पहुँच जाता है। तत्पश्चात् महाश्वेता की सहचरी तरलिका के प्रति पुंडरीक की जिज्ञासा के व्याज से महाश्वेता अपनी सखी और गन्धर्वराज चित्ररथ की कन्या कादम्बरी की कथा सुनाती है। पर वह केवल उसका परिचय ही देती है। कथा पुनः महामुनि जाबालि के मुख में पहुँच जाती है। महाश्वेता के अनुरोध पर चन्द्रापीड़ उसके साथ कादम्बरी के पिता चित्ररथ के राजप्रासाद में जाता है जहाँ उसकी मुलाकात कादम्बरी से होती है और दोनों एक-दूसरे के प्रेम में गिरफ्तार हो जाते हैं। यहाँ से लेकर चन्द्रापीड़ के उज्जयिनी जाने और वैशम्पायन की खोज में पुनः अच्छोद सरोवर आने तक की कथा महर्षि जाबालि के द्वारा ही कही जाती है। पर चन्द्रापीड़ के महाश्वेता के निकट पहुँचते ही कथा पुनः महाश्वेता की आत्मकथा का रूप ले लेती है और तब तक इसी रूप में अग्रसर होती रहती है जब तक वैशम्पायन महाश्वेता के शाप से ही सुग्गा नहीं बन जाता। इसके बाद कथा फिर महर्षि जाबालि के मुख में प्रवेश करती है और चन्द्रापीड़ की अप्रत्याशित मृत्यु (स्थगितमृत्यु) तक की कथा महर्षि जाबालि ही सुनाते हैं। यहाँ पहुँच कर यह रहस्योद्घाटन भी हो जाता है कि शुक ही पूर्वजन्म में वैशम्पायन और उससे भी पूर्व जन्म में पुंडरीक था और शूद्रक अपने पूर्वजन्म में चन्द्रापीड़ था जिसका पूर्व शरीर कादम्बरी के सहवास से अच्छोद सरोवर के तट पर सुरक्षित है। महर्षि जाबालि यह भी कहते हैं कि 'जो कहने को प्रवृत्त हुआ था उसे छोड़कर कहानी के प्रवाह में कहाँ से कहाँ चला आया हूँ।' (यानी कथाकार को भी अपने बहकने का थोड़ा थोड़ा आभास है।) इस बिन्दु पर पहुँचकर कथा पुनः शुक के मुख में प्रवेश करती है। महर्षि जाबालि के मुख से अपनी कथा सुनने के बाद आश्रम से उड़ भागने और एक शबर द्वारा पकड़ लिए जाने तथा शूद्रक के राजदरबार तक पहुँचने तक की कथा वह खुद ही सुनाता है। तत्पश्चात् कथा का सूत्र मूल कथाकार—बाणभट्ट का पुत्र पुलिनभट्ट, जिसने अपने पिता बाणभट्ट की अधूरी कादम्बरी को पूरा किया था—के हाथ में आ जाता है। आगे की कथा शुक और शूद्रक की शाप-मुक्ति की कथा है। और कथा का सुखद अन्त होता है।

कहना न होगा कि कथा के भीतर कथा की जटिल योजना द्वारा अपने पूरे विज्ञान को किसी एकल कथासंसार में रूपायित कर देना कथा-प्रतिभा का ऐसा चमत्कार था जो अब तक संसार की किसी भी भाषा में सम्भव नहीं हुआ था। इसके पहले गुणादय ने, और कुछ दूर तक विष्णु शर्मा ने भी, छोटी छोटी कथाओं को एक दूसरे के भीतर नियोजित करके एक बड़ी कथा निर्मित करने का प्रयास किया था, जिसके केन्द्र में कोई एक 'विषय' होता था। पर किसी बड़े और प्रकाशमान 'विज्ञान' की अभिव्यक्ति के लिए एक के भीतर एक

गुम्फित कथाओं द्वारा 'पर्याप्त बड़े आकार' की, पूरी पुस्तक को निर्मित करने वाली, कथा का निर्माण अब तक किसी कथाकार ने नहीं किया था। सबसे आकर्षक बात तो यह है कि बाणभट्ट कथा में घटित प्रसंगों की विश्वसनीयता के प्रति भी सचेत है। उसका श्रोता-समाज किंचित् शंकालु प्रकृति का है, जिसे आश्वस्त करने के लिए कथाकार को सजग रहना पड़ता है। यह बात आधुनिक उपन्यास और 'कहानी' के सन्दर्भ में कितनी सार्थक है, इसे बताने की आवश्यकता नहीं। आधुनिक 'कहानी' और उपन्यास यथार्थवाद से इतना अधिक आक्रान्त रहा है कि उसमें किसी भी मानवेतर अनुभव से भिन्न प्रसंग के लिए स्थान नहीं होता। हाल के दिनों में इस यथार्थवाद से कथा-लेखकों का थोड़ा थोड़ा मोहभंग शुरू हो गया है और कथा में ऐसे प्रसंगों की योजना भी होने लगी है, जो सपाट यथार्थबोध की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। इस बदलती मानसिकता के परिप्रेक्ष्य में कादम्बरी की कथा-योजना को और भी अच्छी तरह समझा जा सकता है।

1.5.3 हर्षचरित

बाणभट्ट ने 'कादम्बरी' के अतिरिक्त जो दूसरी महत्वपूर्ण रचना की थी, उसका नाम 'हर्षचरित' है। 'हर्षचरित' में वर्धन वंश श्रीहर्ष का, जो एक प्रतापी सम्राट था और भारतीय इतिहास में उसे अन्तिम महान शासक के रूप में स्वीकार किया गया है, चरित्र प्रस्तुत किया गया है। बाणभट्ट उसके दरबार का राजकवि था। कहा जाता है कि बाणभट्ट एक प्रसिद्ध विद्वान कुल का युवक होने के बावजूद अपने मार्ग से भटक गया था, और इतना बदनाम हो चुका था कि जब वह राजाश्रय प्राप्त करने के उद्देश्य से श्रीहर्ष के राजदरबार में पहुँचा तो श्रीहर्ष ने उसे कोई सम्मान नहीं दिया। पर अन्ततः वह श्रीहर्ष के एक निकट अधिकारी कुमार कृष्ण की सिफारिश पर दरबार में जगह प्राप्त करने में सफल हो गया और वह श्रीहर्ष के दरबार का राजकवि बनाया गया। राजकवि बनने के बाद बाणभट्ट ने महाराज श्रीहर्ष के चरित्र को आधार बनाकर 'हर्षचरित' की रचना की। कहा जाता है कि इसमें श्रीहर्ष का चरित्र अपने ऐतिहासिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इतिहासकारों ने इसे मानते हुए इसकी घटनाओं को इतिहास में भी ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया है। पर 'हर्षचरित' निखालिस इतिहास नहीं है। इसमें बाणभट्ट का कविरूप—यद्यपि यह गद्य में रचित है—अपने पूरे वैभव के साथ उपस्थित है। प्रकृति और अन्य प्रकार के वर्णनों में बाणभट्ट की कविकल्पना का मनोहर रूप देखने को मिलता है। इसकी भाषा 'गद्य' होने के बावजूद काव्यगुणों से भरपूर है। इसीलिए आचार्यों ने इसे 'आख्यायिका' कहा है।

1.5.4 दशकुमारचरित

बाणभट्ट के बाद संस्कृत कथाकार दण्डी ने दशकुमारचरित नामक 'पुस्तकाकार कथा' की रचना की। दशकुमारचरित में तीन भाग हैं : 'पूर्वपीठिका', 'चरित' और 'उत्तर-पीठिका'। 'पूर्व पीठिका' में पाँच और 'चरित' में आठ उच्छ्वास हैं। 'उत्तरपीठिका' अष्टम उच्छ्वास का उपसंहार है। यद्यपि इसकी कथा भी समकालीन रुचि को लुभानेवाले काव्यात्मक वस्तु और चरित्र वर्णनों से आक्रान्त है, पर इन कथाओं का विषय सातवीं शताब्दी और उसके पूर्व के समय को प्रामाणित के साथ प्रस्तुत करता है। समकालीन सामन्ती राजनीति और समाज के चित्रण, व्यावहारिक ज्ञान, चौरशास्त्र, प्रेम, रमणीहरण और साहसाभियान से भरी यह कथा यूरोपीय 'रोमांस' के सारे गुणों से सम्पन्न है। इस 'कथा' में दस राजकुमारों की अनुभव-कथाएँ अलग अलग वर्णित हैं, जिन्हें आपस में जोड़ने वाला कथापात्र मगध राजकुमार राजवाहन है। पर ये कथाएँ मिलकर किसी एक सुसम्बद्ध कथानक का निर्माण नहीं करतीं। कहा जा सकता है कि परस्परभिन्न कथाओं को जोड़ने की दिशा में यह भी एक उल्लेखनीय प्रयास था, यद्यपि कादम्बरी की तुलना में यह कहीं

नहीं ठहरता। आधुनिक यथार्थवाद की कसौटी पर इसका कथानक भी खरा नहीं उतरता; कदाचित् इसकी कोई परवाह भी कथाकार को नहीं है। कथा में अनेक ऐसी घटनाएँ आती हैं जो मानव अनुभव के वृत्त में नहीं आतीं, यद्यपि सम्भव है, अपने समय के विश्वासों की कसौटी पर ऐसी घटनाएँ विश्वसनीय भी मानी जाती रही हों। पर जहाँ तक कथा-विन्यास का प्रश्न है, दशकुमारचरित का महत्त्व इस दृष्टि से स्वीकार किया जा सकता है कि इसमें संघटनात्मक जकड़बन्दी नहीं है, जो आज की कहानी और उपन्यास की संरचना की अनिवार्य पहचान हो गयी है। इसे कथा-संरचना के विकास के रूप में भी देखा जा सकता है। हिन्दी में अनेक कहानियाँ और उपन्यास इस प्रविधि में लिखे गये हैं। रुद्र काशिकेय का उपन्यास 'बहती गंगा' इसका एक उदाहरण है। कमलेश्वर की कहानी 'राजा निरबंसिया' और 'अकहानी' श्रेणी की अनेक कहानियाँ भी इसका उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

1.5.5 कथा-रचना की भारतीय परम्परा का अवसान

यह साहित्यिक इतिहास का अजूबापन या त्रासदी है कि बाणभट्ट और दण्डी के बाद कथा-रचना की भारतीय परम्परा आगे नहीं बढ़ी। दसवीं सदी में धनपाल ने तिलकमंजरी के रूप में कादम्बरी की परम्परा को जीवित करने का प्रयत्न तो किया पर संरचना की दृष्टि से उसे कादम्बरी का विकास नहीं कहा जा सकता। इसका सबसे बड़ा कारण कदाचित् यह था कि इस समय तक आते आते संस्कृत केवल राजदरबारों और पंडितों की भाषा रह गयी थी। और चूँकि दसवीं शताब्दी के बाद धीरे धीरे संस्कृत को राजाश्रय प्रदान करनेवाले हिन्दू राज्य समाप्त हो गये, इस कारण संस्कृत काव्य की परम्परा बहुत कमजोर हो गयी। संस्कृत के बाद फारसी केन्द्रीय सत्ता में आ गयी और काव्यरचना का माध्यम भी बनी। पर देश की आम जनता का लगाव न तो संस्कृत से था न फारसी से। इन्हीं परिस्थितियों में उत्तरी भारत की जन-बोलियाँ साहित्य की भाषा बनीं। उन्हें सूफियों और सन्तों-भक्तों का आश्रय मिला और काव्य-रचना का अभूतपूर्व विकास हुआ। इस विकास के मूल में उत्तर भारत की जनता का 'लोकाश्रय' था। बाद में उसे राजदरबारों का भी प्रश्रय मिला। पर गद्य के विकास के लिए जिस राजाश्रय की अपेक्षा होती है, उससे ये जन-भाषाएँ लगभग साढ़े सात सौ वर्षों तक वंचित रहीं। अठारहवीं शताब्दी में ब्रजभाषा और खड़ी बोली में संस्कृत 'योगवाशिष्ठ', 'वेतालपंचविंशति' और 'सिंहासनद्वित्रिंशतिका' आदि संस्कृत गद्यकथा पुस्तकों के रूपान्तर हुए और उनका लोक में प्रचार भी बहुत हुआ, पर कोई मौलिक गद्यकथा पुस्तक ब्रजभाषा या हिन्दी की किसी दूसरी घटक भाषा में नहीं लिखी गयी। 'दस अवतार भाषा' (1744), 'पद्मपुराण का भाषानुवाद' (1761), किस्सा चहार दरवेश का अनुवाद 'नौतर्ज मुरस्सा' (1798) आदि भी इस काल में लोकप्रिय हुई थीं। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व खड़ीबोली हिन्दी में केवल दो मौलिक गद्यकथा पुस्तकें, मुल्ला वजही कृत 'सबरस' (1636) और सैयद इंशा अल्ला खाँ कृत 'रानी' केतकी की कहानी (ल. 1800) उपलब्ध होती हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ऐतिहासिक कारणों से खड़ी बोली के आधार पर विकसित 'हिन्दी' गद्य का विकास हुआ और उसके साथ ही 'गद्यकथा' भी नये अन्दाज में प्रकट हुई। इसी ने 'उपन्यास' का भी रूप ग्रहण किया। पर आश्चर्य की बात यह है कि गुणादय, विष्णु शर्मा, सुबन्धु, बाणभट्ट, दण्डी आदि की भारतीय कथा-परम्परा से इसका सम्बन्ध नहीं जुड़ा। इसे एक साहित्यिक त्रासदी ही समझना चाहिए।

1.6 सारांश

व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'कथा' और 'आख्यान' पर्यायवाची शब्द हैं। प्राचीन साहित्य में इनका प्रयोग भी समान अर्थों में ही होता रहा है। 'आख्यान' शब्द का अर्थ होता है, कथन, निवेदन आदि ; कथा—कहानी तथा प्रतिवचन या उत्तर। विद्वानों के अनुसार आख्यान वैदिक सुपर्ण और मैत्रावरुण आदि से सम्बद्ध कथा का ही नामान्तर है। परम्परा से 'महाभारत' आदि इतिहास ग्रन्थ भी आख्यान काव्य के रूप में मान्य हैं।

'कथा' में तीन तत्त्वों की प्रधानता होती है : घटना—समूह, समयानुक्रम और दिक् या स्पेस तथा कौतूहल। 'घटना' में आकस्मिकता, संयोग और अप्रत्याशित होने के तत्त्व होते हैं। जीवन में प्रमुखता 'कार्यव्यापारों' की—अर्थात् जो कार्य हम रोजमर्रा की जिन्दगी में करते हैं—होती है, 'घटनाओं' की नहीं। पर 'कथा' में 'घटनाओं' की ही प्रमुखता होती है, जीवन के सामान्य कार्य—व्यापार गौण होते हैं। घटनाएँ समय के अनुक्रम में गुँथी होती हैं। समय का एक ऐतिहासिक क्रम होता है जो घड़ी की टिकटिक या कैलेंडर के पृष्ठों द्वारा निर्धारित होता है।

'काल' की तरह 'दिक्' या 'स्पेस' भी कथा के लिए जरूरी होता है। घटनाएँ 'दिक्' में ही घटित हो सकती हैं। पर 'कथा' का 'दिक्' मानव अनुभव की सीमाओं को स्वीकार नहीं करता। बच्चों की कथाओं में हमारी पृथ्वी के जाने पहचाने स्थान ही नहीं, अनजानी जगहें भी, यहाँ तक कि ब्रह्मांड के कल्पित लोक भी, घटना—स्थल के रूप में आते हैं।

'कथा' के लिए यह भी जरूरी है कि 'घटनाएँ' कौतूहल पैदा करने वाली हों। उनमें आकस्मिक और अप्रत्याशित होने के साथ साथ नवीनता भी अपेक्षित होती है। कौतूहल बनाए रखने के लिए यह जरूरी है।

मौखिक रूप में 'कथा' कितनी प्राचीन है, इसका कोई इतिहास उपलब्ध नहीं है। यह अत्यन्त प्राचीन है, इसका अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि आज भी यह मनुष्य की सहज और जन्मजात प्रवृत्ति से जुड़ी हुई है।

अनुमानतः कथा पहले मनोरंजन का ही काम करती होगी। पर धीरे धीरे उसका उपयोग उपदेश या 'मूल्यों' की अभिव्यक्ति के लिए किया जाने लगा होगा।

कथा की लिखित परम्परा का आरम्भ कब हुआ, इसका कोई निश्चित और प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नहीं है। वेद, उपनिषद् और पुराण स्मृति—परम्परा में आते हैं, अतः उनमें आयी कथाएँ भी कहने—सुनने की परम्परा में ही आएँगी। 'महाभारत' के 'लिखित' होने का प्रमाण मिलता है। इसके एक लाख श्लोकों वाले उपाख्यान भाग को 'आद्य भारत' कहा गया है। तदनन्तर व्यास जी ने चौबीस हजार श्लोकों की 'भारत संहिता' बनायी, जिसे 'भारत' कहा जाता है। इस मनुष्यलोक में एक लाख श्लोकों का आद्य भारत प्रतिष्ठित है। इसे ही उग्रश्रवा जी ने नैमिषारण्य में मुनिवरों को सुनाया था। वस्तुतः महाभारत की रचना भी श्रुति परम्परा में ही हुई थी, पर उसके व्यापक प्रचार के लिए स्वयं उसके रचयिता महर्षि व्यास ने ही उसे लिखित रूप देने में गणेश जी की सहायता ली। उसके बाद वह 'वाचन परम्परा' की वस्तु बन गयी जिसमें लिखित कथा श्रोताओं को सुनायी जाती है। 'बड्ढकहा' ('बृहद्कथा') के बारे में भी कहा गया है कि प्रथमतः भगवान शिव ने पार्वती को यह कथा सुनायी थी। फिर गुणादय ने इस कथा को सात लाख श्लोकों में, पैशाची प्राकृत में, लिखित रूप दिया। राजा सातवाहन ने इसके नष्ट होने से

बच रहे एक लाख श्लोकों का अनुवाद संस्कृत में कराया, जिसके बाद में भी अनेक रूपान्तर हुए। पुराणों के अनुसार राजा सातवाहन, अतएव गुणादय, का समय ई.पू. 495–490 है, अन्ततः ग्यारहवीं सदी ईसवी में इसका वह पाठ निर्मित हुआ जो आज उपलब्ध है।

बाद में काव्य शास्त्र में भामह ने गद्यकाव्य के दो भेद, 'कथा' और 'आख्यायिका' निश्चित किये। पहले की कथाएँ कल्पित हैं और दूसरे की ऐतिहासिक। दण्डी के अनुसार वस्तुतः ये सब एक ही जाति के हैं और इस जाति का नाम है आख्यान।

आचार्यों द्वारा निरूपित 'कथा' के उदाहरण के रूप में सुबन्धु की 'वासवदत्ता', बाणभट्ट की 'कादम्बरी' और दंडी का 'दशकुमारचरित' आते हैं।

कथा के भीतर कथा की योजना द्वारा पूरे विज्ञान को किसी एकल कथासंसार में रूपायित कर देना कथा-प्रतिभा का ऐसा चमत्कार था जो अब तक संसार की किसी भी भाषा में सम्भव नहीं हुआ था। इसके पहले गुणादय ने, और कुछ दूर तक विष्णु शर्मा ने भी, छोटी छोटी कथाओं को एक दूसरे के भीतर नियोजित करके एक बड़ी कथा निर्मित करने का प्रयास किया था, जिसके केन्द्र में कोई एक 'विषय' होता था। पर किसी बड़े और प्रकाशमान 'विज्ञान' की अभिव्यक्ति के लिए एक के भीतर एक गुम्फित कथाओं द्वारा 'पर्याप्त बड़े आकार' की, पूरी पुस्तक को निर्मित करने वाली, कथा का निर्माण बाणभट्ट ने 'कादम्बरी' में किया। बाणभट्ट की दूसरी रचना 'हर्षचरित' है, जिसमें श्रीहर्ष का चरित्र प्रस्तुत किया गया है।

बाणभट्ट के बाद दण्डी ने दशकुमारचरित नामक 'पुस्तकाकार कथा' की रचना की, जिसमें दस राजकुमारों की अनुभव-कथाएँ अलग अलग वर्णित हैं, जिन्हें आपस में जोड़ने वाला कथापात्र मगध राजकुमार राजवाहन है। पर ये कथाएँ मिलकर किसी एक सुसम्बद्ध कथानक का निर्माण नहीं करतीं। कहा जा सकता है कि परस्परभिन्न कथाओं को जोड़ने की दिशा में यह भी एक उल्लेखनीय प्रयास था, यद्यपि कादम्बरी की तुलना में यह कहीं नहीं ठहरता।

दसवीं सदी में धनपाल ने तिलकमंजरी के रूप में कादम्बरी की परम्परा को जीवित करने का प्रयत्न तो किया पर संरचना की दृष्टि से उसे भी कादम्बरी का विकास नहीं कहा जा सकता।

दसवीं शताब्दी के बाद धीरे धीरे संस्कृत को राजाश्रय प्रदान करने वाले हिन्दू राज्य समाप्त हो गये, इस कारण संस्कृत काव्य की परम्परा बहुत कमजोर हो गयी। संस्कृत के बाद फारसी केन्द्रीय सत्ता में आ गयी और काव्यरचना का माध्यम भी बनी। पर देश की आम जनता का लगाव न तो संस्कृत से था न फारसी से। इन्हीं परिस्थितियों में उत्तरी भारत की जन-बोलियाँ साहित्य की भाषा बनीं। पर गद्य के विकास के लिए जिस राजाश्रय की अपेक्षा होती है, उससे ये जन-भाषाएँ लगभग साढ़े सात सौ वर्षों तक वंचित रहीं, अतः गद्यकथा का समुचित विकास मध्यकाल में नहीं हो पाया।

अभ्यास

1. 'कथा' और 'आख्यान' अर्थ स्पष्ट करते हुए उसके मूल स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

2. 'कथा' की प्राचीनता का उल्लेख करते हुए उसके मूल उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
3. 'कथा' की लिखित परम्परा का विवेचन कीजिए।
4. 'आख्यान' की प्राचीन अवधारणा का उल्लेख करते हुए उसके विभिन्न रूपों पर प्रकाश डालिए।
5. सातवीं सदी में 'कथा' की नयी अवधारणा का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
6. कथा-रचना की भारतीय परम्परा के अवसान और उसके कारणों का उल्लेख कीजिए।



इकाई 2 कहानी का अर्थ और स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 'कहानी' का अर्थ—व्युत्पत्ति और 'कथा' से सम्बन्ध

2.3 आधुनिक विधा के रूप में 'कहानी'

2.3.1 आधुनिक विधा के रूप में 'कहानी' पद का प्रयोग

2.3.2 अँगरेजी के 'शॉर्ट स्टोरी' पद और अवधारणा से 'कहानी' का सम्बन्ध

2.3.3 कहानी का आकार

2.3.4 कहानी की पहचान का प्रमुख आधार

2.3.5 कहानी और उपन्यास

2.3.6 कहानी का उद्देश्य

2.4 'छोटी कहानी' की अवधारणा

2.4.1 'छोटी कहानी' (शॉर्ट स्टोरी) की अमेरिकी और यूरोपीय अवधारणा

2.4.2 'छोटी कहानी' की परिभाषा

2.4.3 'छोटी कहानी' के रूप-निर्धारण में 'स्केच' और 'उपाख्यान' की भूमिका

2.4.4 'छोटी कहानी' के उदय में साहित्यिक स्वच्छन्दतावाद और साहित्यिक यथार्थवाद की भूमिका

2.5 'छोटी कहानी' की अवधारणा के निर्धारण में यूरोप और संयुक्त राज्य (अमेरिका) की भूमिका

2.5.1 जर्मनी में 'छोटी कहानी'

2.5.2 फ्रांस में 'छोटी कहानी'

2.5.3 रूस में 'छोटी कहानी'

2.5.4 संयुक्त राज्य (अमेरिका) में 'छोटी कहानी'

2.6 सारांश

अभ्यास

2.0 उद्देश्य

एम. ए. हिन्दी के द्वितीय वर्ष के कहानी से सम्बन्धित माड्यूल के पाठ्यक्रम 'कहानी : स्वरूप और विकास' से सम्बन्धित खंड-1 की यह दूसरी इकाई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- 'कहानी' पद की व्युत्पत्ति, अर्थ और 'कथा' से उसके सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।
- आधुनिक विधा के रूप में 'कहानी' के उद्भव और विकास का परिचय प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।

- आधुनिक विधा के रूप में 'कहानी' पद के प्रयोग के आरम्भ की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।
- अँगरेजी के 'शॉर्ट स्टोरी' पद और अवधारणा से 'कहानी' के सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।
- 'छोटी कहानी' की परिभाषा तथा अमेरिकी और यूरोपीय अवधारणा से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।
- 'छोटी कहानी' के रूप-निर्धारण में स्केच और उपाख्यान की भूमिका की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।
- छोटी कहानी की अवधारणा के निर्धारण में यूरोप और संयुक्त राज्य (अमेरिका) की भूमिका से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई से हम इस पाठ्यक्रम की शुरुआत करने जा रहे हैं। 'कहानी' के स्वरूप को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए उसके मूल रूप 'कथा' से परिचित होना आवश्यक है। इसी बात को ध्यान में रख कर यह इकाई लिखी गयी है। प्रायः हिन्दी के विद्वान और अध्यापक 'कथा' और आधुनिक विधा के रूप में 'कहानी' का प्रयोग एक ही अर्थ में करते देख पड़ते हैं। 'कहानी' के विवेचन में इस अनिश्चित अर्थत्व या अनेकार्थता से काम नहीं चल सकता। इस इकाई में हमने 'कथा' और 'कहानी' की सुस्पष्ट परिभाषा करके उनका अन्तर बताया है तथा आधुनिक विधा के रूप में 'कहानी' के आरम्भ का निर्देश किया है। तत्पश्चात् हमने आधुनिक विधा के रूप में 'कहानी' पद के प्रयोग का इतिहास बताया है। उसके बाद अँगरेजी के 'शॉर्ट स्टोरी' पद और अवधारणा से आपको परिचित कराया गया है। यह बताया गया है कि 'कहानी' का आकार उसकी एक पहचान है, पर कहानी की पहचान का प्रमुख आधार उसकी केन्द्रीय संवेदना और समकालीन जीवन और व्यक्ति के यथार्थ का अंकन है। 'कहानी' और 'उपन्यास' का अन्तर स्पष्ट करते हुए 'कहानी' के उद्देश्य पर भी प्रकाश डाला गया है। उसके बाद 'छोटी कहानी' की अवधारणा के निर्धारण और विकास में अमेरिकी और यूरोपीय दृष्टिकोण का विवेचन किया गया है तथा जर्मनी, फ्रांस, रूस और संयुक्त राज्य (अमेरिका) में 'छोटी कहानी' के विकास का परिदृश्य प्रस्तुत किया गया है।

2.2 'कहानी' का अर्थ—व्युत्पत्ति और 'कथा' से सम्बन्ध

सबसे पहले यह जानना जरूरी है कि 'कहानी' का मूल रूप 'कथा' ही है। प्राकृत और अपभ्रंश में इसने 'कहा' का रूप लिया। प्राकृत रचना 'बड्ढकहा' और अपभ्रंश काव्य 'भविष्यदत्त कहा' इसके उदाहरण हैं। 'कथा' का ऊनवाचक रूप बना 'कहाणिया'। अपभ्रंश 'कहाणी' पद भी प्रचलित हुआ। विद्यापति कृत 'कीर्तिलता' में उसे 'कहाणी'—'पुरुष कहाणी'—कहा गया है। पर इसका एक दूसरा पाठ भी प्राप्त होता है—'सुपुरुष कहनी हौं कहऊँ'। इसका यह अर्थ किया जा सकता है कि चौदहवीं सदी तक मैथिली में इसका 'कहनी' रूप भी प्रचलित हो चुका था। गोस्वामी तुलसीदास ने भी 'कहनी' का उल्लेख किया है : 'साखी सबदी दोहरा कहि कहनी उपखान'। भोजपुरी में आज भी 'कहनी' शब्द का ही प्रयोग होता है। हिन्दी में इस 'कहनी' शब्द ने 'कहानी' का रूप ग्रहण कर लिया।

सैयद इंशा अल्ला खाँ ने अपनी कथा-रचना का शीर्षक रखा 'रानी केतकी की कहानी'। 'कहानी' पद आरम्भ में 'उपाख्यान' और 'चरित' के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ। इंशा अल्ला खाँ ने 'रानी केतकी की कहानी' का वैकल्पिक शीर्षक रखा था 'उदयभानु चरित' और सदल मिश्र ने अपनी इसी श्रेणी की रचना को 'उपाख्यान'—'नासिकेतोपाख्यान'—कहा था। लगता है, अर्थ की समानता होने पर भी पौराणिक कथाओं के लिए 'कथा' और 'उपाख्यान' तथा विशुद्ध लौकिक कथाओं के लिए 'कहानी' शब्द का प्रयोग होने लगा था। उन्नीसवीं शताब्दी के पहले तीन चरणों में मुद्रित हिन्दी कथाओं के लिए 'कहानी', 'उपाख्यान', 'वृत्तान्त' आदि पद प्रचलित थे। 'किस्सा', 'दास्तान' और 'अफसाना' शब्द भी अरबी-फारसी से आकर हिन्दी-उर्दू में प्रयुक्त होने लगे थे। इसी समय बँगला की तरफ से एक पद आया 'उपन्यास', जिसे बालकृष्ण भट्ट, देवकीनन्दन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी ने हिन्दी में भी 'नये' प्रकार की लम्बी कथा के पर्याय रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। इसी प्रकार बँगला में 'छोटी कहानी' के लिए 'छोटो गल्प' या 'गल्प' पद का प्रयोग आरम्भ हुआ जो हिन्दी में भी जहाँ तहाँ प्रयुक्त हुआ, पर बाद में नहीं चला।

2.3 आधुनिक विधा के रूप में 'कहानी'

भारत में प्राचीन काल से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग तीसरे चरण तक 'कथा' का उपयोग प्रबन्ध काव्य और नाटक में गौण तत्त्व के रूप में होता रहा। गद्य में कथा रचने की परम्परा का आरम्भ भी विष्णु शर्मा कृत 'पंचतन्त्र' से हो गया, यद्यपि उसे लिखित रूप कुछ बाद में ही मिला होगा। सर्वप्रथम बाणभट्ट ने 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' के रूप में गद्यकथा को 'काव्य' के पद पर प्रतिष्ठित किया। सुबन्धु और दंडी ने भी इस परम्परा को आगे बढ़ाया पर उसके बाद यह परम्परा क्षीण हो गयी। उन्नीसवीं शताब्दी में, भारत में, मुद्रणयन्त्र के प्रवेश के बाद 'कथा' न केवल बाल-बुद्धि के मनोविनोद के लिए पुस्तक का रूप ग्रहण करने लगी, वरन् वह लेखक के विचारों, भावों और नैतिक बोध की अभिव्यक्ति का साधन भी बनने लगी। कथा के इन्हीं रूपों से हिन्दी में 'उपन्यास' और 'कहानी' का विकास हुआ।

2.3.1 आधुनिक विधा के रूप में 'कहानी' पद का प्रयोग

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्ष में 'सरस्वती' के प्रकाशनारम्भ के साथ उसके सम्पादकों ने लघु आकारी कथाओं के प्रकाशन की आवश्यकता महसूस की। यह पत्रिका की आन्तरिक आवश्यकता भी थी और अँग्रेजी में लोकप्रिय हो चुकी 'शॉर्ट स्टोरी' का प्रभाव भी। 'सरस्वती' के पहले ही अंक में प्रकाशित किशोरीलाल गोस्वामी की जिस रचना ('इन्दुमती') को 1928-29 में शुक्ल जी ने, और अन्य आलोचकों ने भी, 'कहानी' कहा, उसे स्वयं गोस्वामी जी ने 'आख्यायिका' कहा था। सम्भवतः सर्वप्रथम श्यामसुन्दर दास ने अँगरेजी की 'शॉर्ट स्टोरी' विधा के लिए हिन्दी में 'आख्यायिका' पद का प्रयोग आरम्भ किया। जनवरी 1900 में, 'सरस्वती' के प्रथम अंक में ही, जिसके सम्पादक-मंडल में श्यामसुन्दर दास भी शामिल थे, 'इन्दुमती' आख्यायिका के नाम से प्रकाशित हुई। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी, 1903 में 'सरस्वती' का सम्पादक नियुक्त होने के बाद, इस नयी कथा-विधा के लिए 'आख्यायिका' पद को स्वीकार कर लिया और 'आख्यायिका-खंड' शीर्षक स्तम्भ में खुद की चार 'आख्यायिकाएँ'—'तीन देवता', 'महारानी चन्द्रिका', 'स्वर्ग की झलक' और 'भारतवर्ष का तारा' प्रकाशित कीं। इसके बाद नियमित रूप से 'सरस्वती' में उनकी 'आख्यायिकाएँ' प्रकाशित होती रहीं। उल्लेखनीय है कि यहाँ 'कथा' और 'आख्यायिका' का भेद भुला दिया गया। भामह के अनुसार 'कथा' की वस्तु कल्पित,

जबकि 'आख्यायिका' की 'ख्यात' अथवा ऐतिहासिक होती थी। एक रोचक तथ्य यह है कि स्वयं गोस्वामी जी ने 'इन्दुमती' को तो 'आख्यायिका', पर अपनी इसी श्रेणी की दूसरी रचना 'गुलबहार' को 'उपन्यास' कहा था। स्वयं शुक्ल जी ने भी अपनी रचना 'ग्यारह वर्ष का समय' को 'आख्यायिका' ही कहा था। तनिक बाद में जयशंकर प्रसाद ने भी अपनी छोटी कथा-रचनाओं को 'आख्यायिका' नाम से ही अभिहित किया। 'इन्दु' (1909) में 'आख्यायिका' और 'मर्यादा' (1911), 'माधुरी' (1922), 'विशाल भारत' (1928) आदि में बँगला के अनुकरण पर 'गल्प' पद प्रचलित रहे। हिन्दी में बँगला और अँगरेजी के प्रभाव से 'कहानी' का लेखन-प्रकाशन तो आरम्भ हो गया पर उसके नामकरण और स्वरूप-निर्धारण की प्रक्रिया लम्बे समय तक चलती रही, और सच पूछें तो वह आज भी जारी है। लगभग 1936 तक 'आख्यायिका', 'गल्प' और 'कहानी' पद साथ साथ प्रयोग में चलते रहे। प्रेमचन्द ने 1908 में प्रकाशित अपने कहानी-संग्रह 'सोजे वतन' की भूमिका में पहली बार 'शॉर्ट स्टोरी' पद के अर्थ में 'कहानी' पद का प्रयोग किया था, पर हिन्दी में आने के बाद वे अपनी कहानियों को कभी 'कहानी', कभी 'आख्यायिका' और कभी 'गल्प' कहते रहे। 1936 में प्रेमचन्द उच्चकोटि के कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। 'कहानी' की उनकी अवधारणा भी एक मुकाम पर पहुँच चुकी थी पर कहानी के लिए वे 'आख्यायिका' और 'गल्प' का भी प्रयोग करते रहे। 'मानसरोवर' के प्रथम भाग के 'प्राक्कथन' से स्पष्ट है कि वे अबतक 'शॉर्ट स्टोरी' के लिए किसी निश्चित हिन्दी पद का चयन नहीं कर सके थे, पर जहाँ तक 'शॉर्ट स्टोरी' या 'छोटी कहानी' की अवधारणा का सवाल है, इसका स्पष्ट बोध उन्हें हो चुका था, जिसका प्रमाण उनका यह 'प्राक्कथन' ही नहीं, उनकी 1930 के बाद की कहानियाँ भी हैं। उधर रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में 'शॉर्ट स्टोरी' के लिए 'छोटी कहानी' पद के प्रयोग पर जोर दिया और शुक्ल जी की स्वीकृति की मुहर लगने के बाद चौथे दशक में 'शॉर्ट स्टोरी' के लिए 'छोटी कहानी' (संक्षेप में 'कहानी') पद आलोचकों और कहानीकारों, दोनों, के बीच लगभग मान्य हो गया।

2.3.2 अँगरेजी के 'शॉर्ट स्टोरी' पद और अवधारणा से 'कहानी' का सम्बन्ध

यह तो हम देख ही चुके हैं कि किस प्रकार अपभ्रंश का 'कहाणी' पद लोकभाषाओं में 'कहनी' और परिनिष्ठित हिन्दी में 'कहानी' के रूप में परिणत हुआ। उन्नीसवीं सदी के सातवें दशक के अन्त में (1870) 'कहानी' पद ने बड़े गुपचुप तरीके से 'उपन्यास' का रूप ले लिया। यद्यपि 1862 में बँगला में 'उपन्यास' पद का प्रथम प्रयोग भूदेव मुखोपाध्याय के 'ऐतिहासिक उपन्यास' के रूप में हो चुका था और बंकिमचन्द्र चटर्जी उसे अपनी रचनाओं के द्वारा लोकप्रिय भी बना चुके थे, पर हिन्दी के कथाकारों के बीच यह पद सुपरिचित नहीं हुआ था। यही कारण है कि जब पं. गौरीदत्त ने अपनी कथा-रचना प्रस्तुत की तो उसका शीर्षक कहानी ही—'देवरानी जेठानी की कहानी'—रखा, जो अपनी प्रकृति में उपन्यास का आरम्भिक रूप था। उसके बाद, आठवें दशक में 'उपन्यास' पद हिन्दी में आया और नवें तथा अन्तिम दशक में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके सहयोगी लेखकों ने, विशेष रूप से बालकृष्ण भट्ट, देवकीनन्दन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी ने, हर पढ़ेलिखे व्यक्ति के बीच इसका प्रवेश करा दिया पर उन्नीसवीं सदी के लगभग अन्त तक 'कहानी' पद का प्रयोग उसके परम्परागत अर्थ में ही होता रहा। जैसा हम बता चुके हैं, यद्यपि विधा के रूप में 'शॉर्ट स्टोरी' को मान्यता 'सरस्वती' में 1900 में प्रकाशित किशोरीलाल गोस्वामी की रचना 'इन्दुमती' से ही मिल चुकी थी, पर अँगरेजी के 'शॉर्ट स्टोरी' पद के अर्थ में इसका प्रयोग पहली बार प्रेमचन्द ने 1908 में किया।

जिस समय रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का इतिहास के प्रथम संस्करण (1929) में 'छोटी कहानी' और उसके पर्याय के रूप में 'कहानी' और 'आधुनिक कहानी' पदों का प्रयोग किया, उस समय तक अमेरिका और यूरोप में 'छोटी कहानी' अपने विकास की कई मंजिलें पार कर चुकी थी। हिन्दी में अभी 'कथा' तथाकथित 'छोटी कहानी' में रूपान्तरित होने की प्रक्रिया से गुजर रही थी। मूल प्रश्न यह है कि 'छोटी कहानी' है क्या? वस्तुतः 'छोटी कहानी' को किसी बने-बनाये साँचे में ढली हुई परिभाषा में बाँधना सम्भव नहीं है। यह एक विकासमान विधा है और अभी उसकी विकास-प्रक्रिया जारी है।

2.3.3 कहानी का आकार

यह तो आप देख ही सकते हैं कि 'छोटी कहानी' पद में उसके, आकार की दृष्टि से, 'छोटा' होने का भाव निहित है। 'उपन्यास' और 'कहानी' की भेदक पहचान का एक आधार उनका आकार भी माना जाता है। उपन्यास का आकार 'बड़ा' और कहानी का आकार 'छोटा' होता है। पर 'छोटा' और 'बड़ा' शब्द-सापेक्ष हैं और उनका कोई निश्चित मापदंड नहीं निर्धारित किया जा सकता। 'छोटी कहानी' या 'शार्ट स्टोरी' की एक 'क्लासिक' परिभाषा यह है कि उसे एक बैठक में समाप्त हो जाना चाहिए। एडगर एलेन पो के अनुसार कहानी मात्र इतनी लम्बी होनी चाहिए कि वह आधे घंटे से लेकर दो घंटे में समाप्त की जा सके। पर 'एक बैठक' या 'आधे घंटे से लेकर दो घंटे में' 'पढ़ जाना' कहानी के आकार का कोई निश्चित मापदंड नहीं हो सकता। कुछ परिभाषाएँ इसकी अधिकतम शब्द-संख्या 7,500 निर्धारित करती हैं। सामान्य व्यवहार में 'शार्ट स्टोरी' पद वैसी कथा-रचनाओं को निर्देशित करता है, जिनमें अधिकतम 20,000 और न्यूनतम 1,000 शब्द हों। एक हजार से कम शब्दवाली कहानियों को अँगरेजी में 'लैस फिक्शन', 'शॉर्ट शॉर्ट स्टोरी' या 'माइक्रो स्टोरी' नाम से जाना जाता है और 20,000 शब्दों से अधिक आकारवाली कथाओं को 'नॉवेलेट', 'नोवेल' या 'नॉवेल' कहते हैं। पर यह आकार-निर्धारण निर्विवाद हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। हिन्दी में 150 शब्दों से लेकर 10,000 शब्दों तक की कहानियों को 'कहानी' ('छोटी कहानी' के अर्थ में) कहा गया है। इधर हिन्दी में 'लघु कथा' और 'लम्बी कहानी' पद का भी प्रयोग काफी अराजक रूप में होने लगा है। कहानी-लेखकों और सम्पादकों के अनुसार इनकी आकार-सीमा अक्सर बदलती रहती है। इस अराजकता को समाप्त करने के लिए कम-से-कम एक लचीला मानक तो होना ही चाहिए। इस प्रसंग में 'लघु कथा' की शब्द-संख्या 150-300, 'कहानी' की शब्द-संख्या 1000-3000, और 'लम्बी कहानी' की शब्द-संख्या 4000-15,000 प्रस्तावित की जा सकती है। 'लघु कथा', 'कहानी', 'लम्बी कहानी', 'उपन्यासिका', 'लघु उपन्यास' और 'उपन्यास' के बीच की दूरी इतनी लचीली रखी जा सकती है, जिसके बीच ये विधाएँ, आवश्यक होने पर, आवाजाही कर सकें। मेरे विचार से यह 'लघु-कथा', 'कहानी' और 'लम्बी कहानी' जैसे पदों के प्रयोग में अराजकता दूर करने का एक कामचलाऊ नुस्खा हो सकता है।

2.3.4 कहानी की पहचान का प्रमुख आधार

आकार 'कहानी' की पहचान का एक बहुत स्थूल मानक ही बन सकता है। यह तो सर्वस्वीकृत तथ्य है कि 'शॉर्ट स्टोरी' विधा पहले यूरोपीय भाषाओं में विकसित हुई। उत्तर भारत में पहले बँगला में और उसके बाद हिन्दी में 'शॉर्ट स्टोरी' भिन्न-भिन्न नामों से प्रचलन में आयी। बँगला में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशक में 'शार्ट स्टोरी' के नमूने पर 'छोटो गल्प' या 'गल्प' नाम से लगभग 44 रचनाएँ लिखीं जो उनके

‘साधना’ नामक मासिक-पत्र में प्रकाशित हुई। उसके अगले दशक, 1900-1910 में हिन्दी-उर्दू में इसी श्रेणी की रचनाएँ ‘सरस्वती’, ‘जमाना’ आदि पत्रिकाओं में ‘आख्यायिका’ और ‘कहानी’ नाम से प्रकाशित हुई।

अँगरेजी आलोचकों द्वारा ‘शार्ट स्टोरी’ की पहचान ऐसी संक्षिप्त गद्यकथा के रूप में की गयी है, जो ‘नॉवेल’, ‘एपिक’ और ‘रोमांस’ जैसे बृहदाकार, व्यापक फलक वाले कथा-रूपों से भिन्न होती है। उनसे अलग, ‘शॉर्ट स्टोरी’ का उद्देश्य किसी एकल प्रभाव की सृष्टि करना होता है, जो किसी एक सार्थक प्रसंग या दृश्य से, जिसमें कुछ थोड़े से—कभी कभी तो मात्र एक ही—पात्र कार्यरत होते हैं, बिजली की चमक की तरह उद्भासित हो उठता है। इस कथा-रूप में मितप्रसारी दृश्य-रचना और संक्षिप्त वर्णन की अपेक्षा की जाती है ; चरित्र कार्यव्यापार और नाटकीय मुठभेड़ से युक्त तो होते हैं, पर उनका पूर्ण विकास दिखाना अपेक्षित नहीं होता। अनेक आलोचकों ने “शॉर्ट स्टोरी” को प्रथमतः उपन्यास के सन्दर्भ में ही पहचानने का प्रयास किया है। उनके अनुसार ‘छोटी कहानी’ उपन्यास की तुलना में कम जटिल, सामान्यतः किसी एक प्रसंग पर केन्द्रित होती है ; उसमें कोई एकल कथानक, कोई एकल दृश्य और सीमित संख्या में पात्र होते हैं तथा वह छोटी कालावधि में नियोजित होती है। ‘छोटी कहानी’, अपने छोटे आकार के कारण, बड़े आकार वाली कथाओं की तरह दृश्य-योजना, परिवेश और मुख्य पात्रों के परिचय में, जिसे अँगरेजी के आलोचक ‘एक्सपोजीशन’ कहते हैं, बहुत उदार नहीं हो सकती। प्रायः छोटी कहानी कार्य-व्यापार के बीच की किसी क्रिया से, आकस्मिक आरम्भ के साथ शुरू होती है। बड़ी कहानियों की तरह छोटी कहानियों के कथानक में भी ‘चरमोत्कर्ष’ (क्लाइमेक्स), संकट का क्षण या मोड़ होते हैं, पर वे प्रायः एकल होते हैं ; उनका अन्त भी प्रायः आकस्मिक और खुला होता है। हिन्दी में प्रेमचन्द और रामचन्द्र शुक्ल ने कहानी के स्वरूप-निर्धारण का प्रयास किया था। प्रेमचन्द का यह प्रयास उनके कहानी-लेखन के अनुभव और रामचन्द्र शुक्ल का प्रयास उनके समकालीन हिन्दी कहानी के सूक्ष्म अध्ययन पर आधारित था। मानसरोवर, भाग-1 के ‘प्राक्कथन’ में प्रेमचन्द लिखते हैं : “वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम, अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है ; बल्कि अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावना से अनुरजित होकर कहानी बन जाती हैं।” इसी ‘प्राक्कथन’ में वे आगे लिखते हैं : “सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो। वे मानते हैं कि “उपन्यासों की भाँति कहानियाँ भी कुछ घटना-प्रधान होती हैं, कुछ चरित्र-प्रधान। चरित्र-प्रधान कहानी का पद ऊँचा समझा जाता है ; मगर कहानी में बहुत विस्तृत विश्लेषण की गुंजाइश नहीं होती। यहाँ हमारा उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्य को चित्रित करना नहीं, वरन् उसके चरित्र का एक अंग भर दिखाना है।” वे इसमें यह भी जोड़ते हैं कि “कहानी जीवन के बहुत निकट आ गयी है। उसकी जमीन अब उतनी लम्बी-चौड़ी नहीं है। उसमें कई रसों, कई चरित्रों और घटनाओं के लिए स्थान नहीं रहा। अब वह केवल एक प्रसंग का, आत्मा की एक झलक का सजीव, मर्मस्पर्शी चित्रण है। इस एकतथ्यता ने उसमें प्रभाव, आकस्मिकता और तीव्रता भर दी है। अब उसमें व्याख्या का अंश कम, संवेदना का अंश अधिक रहता है। उसकी शैली भी अब प्रवाहमय हो गयी है। लेखक को जो कुछ कहना है, वह कम-से-कम शब्दों में कह डालना चाहता है। वह अपने चरित्रों के मनोभावों की व्याख्या करने नहीं बैठता, केवल उसकी ओर इशारा भर कर देता है।” वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि “गल्प का आधार अब घटना नहीं, मनोविज्ञान की अनुभूति है। आज लेखक केवल कोई रोचक दृश्य देखकर कहानी लिखने नहीं बैठ जाता। उसका उद्देश्य स्थूल सौन्दर्य नहीं। वह तो कोई ऐसी प्रेरणा चाहता है, जिसमें सौन्दर्य की झलक हो और इसके द्वारा वह

पाठक की सुन्दर भावनाओं को स्पर्श कर सके।" रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में प्राचीन कथा साहित्य (संस्कृत) में उपलब्ध कथाओं को दो 'स्थूल भेदों' में—'घटनाप्रधान' और 'मार्मिक'—वर्गीकृत करते हुए उनके मिश्रण की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया। बृहत्कथा, बैतालपचीसी, सिंहासनबत्तीसी आदि को उन्होंने 'घटनाचक्र में रमानेवाली' तथा कादम्बरी, माधवानल, कामकन्दला आदि को 'मार्मिक स्थलों में रमानेवाले भावप्रधान आख्यान' कहा है। 'आधुनिक ढंग के उपन्यासों और कहानियों' के स्वरूप-विकास में उन्होंने नाटक के योगदान को रेखांकित किया, जिससे "घटनाओं की श्रृंखला लगातार सीधी न जाकर इधर उधर और श्रृंखलाओं से गुंफित होती चलती है और अन्त में जाकर सबका समाहार हो जाता है।" शुक्ल जी के अनुसार 'घटनाओं के विन्यास की यह वक्रता या वैविध्य उपन्यासों और आधुनिक कहानियों की वह प्रत्यक्ष विशेषता है जो उन्हें पुराने ढंग की कहानियों से अलग करती है।' इसी आधार पर शुक्ल जी ने राजा शिवप्रसाद के 'राजा भोज का सपना' या 'वीर सिंह का वृत्तान्त' को 'आधुनिक कहानी' नहीं माना है। इसी सिलसिले में शुक्ल जी ने इस तथ्य का भी उल्लेख किया है कि अँगरेजी पत्रिकाओं में प्रकाशित होनेवाली 'छोटी आख्यायिकाओं या कहानियों' से प्रेरणा लेकर बँगला में वैसी ही कहानियाँ 'गल्प' के नाम से प्रकाशित होने लगी थीं। उनके अनुसार "ये कहानियाँ जीवन के बड़े मार्मिक और भावव्यंजक खंडचित्र के रूप में होती थीं और उनसे प्रेरणा ग्रहण कर सरस्वती में इस प्रकार की कहानियाँ प्रकाशित होने लगीं।" शुक्ल जी ने भी स्वीकार किया कि हिन्दी ने कहानी का ढाँचा पश्चिम से लिया है। पर उन्होंने सावधान किया कि यह ग्रहण 'ढाँचे' तक ही रहना चाहिए। इसका मुख्य कारण कदाचित् यह था कि शुक्ल जी के समय में हिन्दी में जो कहानियाँ लिखी जा रही थीं, उनका हिन्दी साहित्य के इतिहास में समावेश यूरोपीय विद्वानों द्वारा स्थिर 'कहानी' के सिद्धान्तों की कसौटी पर नहीं किया जा सकता था। शुक्ल जी ने इसे देखते हुए 'छोटी कहानी' के स्वरूप के सम्बन्ध में एक लचीला दृष्टिकोण अपनाया था।

पर ये कसौटियाँ भी ऐसी नहीं जो सभी कहानियों पर समान रूप से लागू की जा सकें। कहानी में नये नये प्रयोग होते रहे हैं, आज भी हो रहे हैं और कहानी का रूप नव्य से नव्यतर होता रहा है। जिस समय हिन्दी कहानी बीसवीं सदी के छठे दशक में प्रविष्ट हुई, विश्व स्तर पर कहानी का रूप अत्यधिक वैविध्यपूर्ण और जटिल हो चुका था। लुइगी पिरांडेलो (सिसिली), फ्रान्ज़ काफ़्का (चेकोस्लोवाकिया), अकुतागावा र्युनोसुके (जापान), जॉर्ज लुइस बोर्हस (अर्जेन्टीना) जैसे कहानीकारों ने कहानी के स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया था। कहानी-रचना के मूल उपकरण उल्लेखनीय रूप में बदल चुके थे। घटाटोप युक्त या आश्चर्यपूर्ण घटनाएँ, जो सामान्यतः 19वीं शताब्दी की कहानी पहचान हुआ करती थीं, बीसवीं शताब्दी के कहानीकारों के लिए महत्वपूर्ण नहीं रह गयी। सूक्ष्म कार्यव्यापारों और सामान्य प्रसंगों में उसकी रुचि ज्यादा हो गयी। आरम्भिक बीसवीं शताब्दी के एक प्रभावशाली लेखक, शेरवुड एंडर्सन, का मानना है कि कहानी के केन्द्र में एक कथानक होने की अनावश्यक धारणा ने 'कहानी' को सबसे ज्यादा बरबाद किया है। उसके अनुसार कहानी का उद्देश्य 'रूप' को प्राप्त करना है, न कि 'कथानक' को। बीसवीं शताब्दी में छोटी कहानी के इतिहास में 'रूप' के प्रति झुकाव और प्रयोग की प्रवृत्ति हावी होती दिखाई पड़ती है। भले ही इस सदी के लोकप्रिय कहानीकार—ओ. हेनरी, पॉल मोरान आदि—कथानक के अनुसार कहानियाँ लिखते रहे हों, अपेक्षाकृत बड़े लेखक संरचना के लिए दूसरी ओर देखने लगे हैं, जिनके प्रति हल्के पाठकों की प्रतिक्रिया होती है कि "इन कहानियों में तो कुछ होता ही नहीं!" अर्नेस्ट हेमिंग्वे की 'ए क्लीन वेल—लाइटेड प्लेस' जैसी कहानियों में बाहरी कार्यव्यापार इतना कम है कि उनमें कोई 'संरचना' दिखाई ही नहीं पड़ती। इस प्रकार की कहानियाँ बाहरी द्वन्द्व की अपेक्षा

मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व के चारों ओर बुनी जाती हैं। हेमिंग्वे की कतिपय, और डी. एच. लॉरेन्स, कैथरीन मैन्सफील्ड आदि की अनेक, कहानियों में बाहरी कार्यव्यापार और घटनाओं का महत्त्व गौण है; उनका महत्त्व इतना ही है कि वे कहानी के मनोवैज्ञानिक आधार—स्तम्भ का उद्घाटन करती हैं। छठे दशक के हिन्दी कथाकार कहानी की इस विश्वस्तरीय संरचना को आयत्त करने का प्रयास करते दिखाई देते हैं।

फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि, विश्व स्तर पर भी, बीसवीं शताब्दी के कहानी—लेखक की संरचनात्मक समस्याओं का समाधान हो गया है। प्रारम्भिक संरचना के अभिकर्ता के रूप में आश्चर्यजनक और कौतूहलजन्य प्रसंगों का शताब्दी के मध्य में ही व्यापक रूप में बहिष्कार हो गया। अब 'छोटी कहानी' एक छोटे, पर बौद्धिक दृष्टि से ज्यादा माँग करने वाले पाठकवर्ग का प्रिय कथा—रूप हो गयी है। हिन्दी के कहानीकार भी इस दिशा में सक्रिय हैं। संरचना की दृष्टि से चौथे दशक में हिन्दी कहानी प्रौढ़ता पर पहुँच गयी, जिसका श्रेय प्रेमचन्द के साथ जैनेन्द्र और अज्ञेय को है। पाँचवें दशक में मंटो और बेदी ने और छठे दशक में अमरकान्त, मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, शेखर जोशी, इन्तिजार हुसैन, निर्मल वर्मा, रेणु आदि ने कहानी की संरचना को अपेक्षित ऊँचाई पर पहुँचा दिया। पर विश्व स्तर पर पहुँचने की जल्दबाजी और उतावली ने अनेक कहानीकारों को हास्यास्पद भी बना दिया है। किसी भी साहित्य—विधा का स्वरूप उस भाषा के बोलनेवालों के बौद्धिक और सांस्कृतिक स्तर पर निर्भर होता है। वस्तुतः किसी भाषा का बौद्धिक—सांस्कृतिक स्तर ही उसकी साहित्य—विधाओं के 'रूप' और संरचना का निर्धारण करता है। इक्कीसवीं शताब्दी की हिन्दी कहानी की संरचना कैसी होगी, यह हिन्दी क्षेत्र के जीवन में आने वाले बौद्धिक—सांस्कृतिक बदलाव पर निर्भर है।

2.3.5 कहानी और उपन्यास

कथ्य की दृष्टि से 'उपन्यास' और 'कहानी' में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। दोनों का सम्बन्ध मानव जीवन की सच्चाइयों और संवेदनाओं से होता है। अन्तर यह है कि जहाँ उपन्यास में मानव—जीवन की सच्चाइयों और संवेदनाओं का एक 'विजन' में समाहार होता है, वहाँ कहानी मात्र एक सच्चाई या संवेदना के बिन्दु पर केन्द्रित होती है। कहानी का यथार्थ उपन्यास के यथार्थ की तरह जीवन के व्यापक सन्दर्भों से युक्त नहीं होता। 'कहानी' में उपन्यास की तरह पात्रों का बाहुल्य भी अपेक्षित नहीं होता। अधिकतर तो कहानी में दो—एक पात्र ही होते हैं; यदि कथ्य की अनिवार्यता के कारण कुछ अधिक पात्र आते भी हैं तो उनकी कोई स्वतन्त्र भूमिका नहीं होती। 'कहानी' के केन्द्रीय पात्र का भी पूरा चरित्र कहानी का विषय नहीं बनता; उसके चरित्र का कोई मार्मिक प्रसंग, कोई करारा संकट, कोई अप्रत्याशित स्थिति, कोई मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व ही कहानी का विषय बनता है। 'कहानी' में यथार्थ की स्थिति बिजली की चमक की तरह होती है, जहाँ यथार्थ का कोई क्षण सहसा उद्भासित हो जाता है। उपन्यास में मनुष्य के जीवन, उसके सामाजिक सम्बन्धों, उसकी मनोवैज्ञानिक समस्याओं आदि के अवलोकन, विश्लेषण और अंकन के लिए पर्याप्त अवकाश होता है। कहानी में यथार्थ की अभिव्यक्ति इतने व्यापक पैमाने पर नहीं होती। 'कहानी' में यथार्थ उद्भासित ही हो पाता है, विश्लेषित नहीं हो पाता। एडगर एलेन पो के अनुसार 'कहानी' अपने को किसी लाजवाब या एकल प्रभाव पर केन्द्रित रखती है और प्रभाव की समग्रता ही उसका प्रमुख लक्ष्य होता है। पो का मानना था कि 'शार्ट स्टोरी' की निश्चित पहचान उसकी प्रभावान्विति है।

2.3.6 'कहानी' का उद्देश्य

कहानी के उद्देश्य के सम्बन्ध में मतभेद की पूरी गुंजायश है। 'कथा' का उद्देश्य सामान्य कोटि का मनोरंजन और उसके साथ साथ किसी उपदेश की व्यंजना या किसी नैतिक मूल्य का प्रतिपादन होता था। आधुनिक कहानी का उद्देश्य मनोरंजन या किसी नैतिक मूल्य का प्रतिपादन नहीं रह गया है। आयरिश कहानी-लेखक फ्रैंक ओ' कोनोर ने 'छोटी कहानी' के उद्भव के सम्बन्ध में एक बड़ी उल्लेखनीय टिप्पणी की है। उसका मानना है कि कहानियाँ 'सतह के नीचे छिपे आबादी-समूह' द्वारा प्रभुत्वसम्पन्न समुदाय को सम्बोधित करने का साधन हैं। उसने कहानी को 'छापामार लड़ाई' कहा था। कहानी के इस गुण को भारतेन्दु युग के लेखकों ने नहीं समझा था, अन्यथा वे इनका उपयोग औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध छापामार लड़ाई के रूप में अवश्य करते। इसे कुछ कम तीव्रता के साथ माधव प्रसाद मिश्र ('पुरोहित का आत्मत्याग'), माधवराव सप्रे ('एक टोकरी भर मिट्टी'), मास्टर भगवान दास ('प्लेग की चुड़ैल'), गिरिजादत्त वाजपेयी ('पंडित और पंडितानी'), 'बंगमहिला' ('कुम्भ में छोटी बहू' और 'दुलाई वाली') ने और पूरी तीव्रता में नवाबराय (प्रेमचन्द) ने समझा था। बंगमहिला आदि ने अपनी कहानियों के माध्यम से समकालीन स्त्री की पीड़ा और पुकार को प्रभुत्वसम्पन्न पुरुष समाज तक पहुँचाने का प्रयास किया था और नवाब राय ने एक बेहद शक्तिशाली औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध दमित शासित वर्ग की व्यथा और विद्रोह को वाणी दी थी। भारतेन्दु युग की पत्रिकाओं में व्यक्तिगत निबन्धों, लेखों और सम्पादकीय टिप्पणियों के माध्यम से औपनिवेशिक शासन में कराहते और सामाजिक अन्तर्विरोधों से ग्रस्त भारतीय जीवन की यथार्थ तस्वीर पेश की जा रही थी। यथार्थवादी उपन्यासों के माध्यम से भी समकालीन जीवन और व्यक्तियों की झँकियाँ प्रस्तुत होने लगी थीं। पर कहानी इस काम को और भी बेहतर ढंग से कर सकती है, इसकी तरफ भारतेन्दु काल के लेखकों का ध्यान नहीं गया।

2.4 'छोटी कहानी' की अवधारणा

यह मानने में कोई दुविधा नहीं हो सकती कि स्वतन्त्र विधा के रूप में कहानी की पहचान के निर्धारण का आरम्भिक श्रेय यूरोप और संयुक्त राज्य(अमेरिका) के कहानी-लेखकों और आलोचकों को ही है। इसे समझने के लिए अमेरिका और यूरोप में 'छोटी कहानी' की अवधारणा और एक नयी विधा के रूप में उसके विकास के इतिहास पर उड़न-दृष्टि डाल लेना अपेक्षित है।

2.4.1 'छोटी कहानी (शॉर्ट स्टोरी) की अमेरिकी और यूरोपीय अवधारणा

अमेरिकी आलोचक एडगर एलेन पो 'छोटी कहानी' (शॉर्ट स्टोरी) के आदि प्रवक्ता माने जाते हैं। 1846 में उनकी 'फिलॉसोफी ऑफ कम्पोजीशन' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई थी, जिसमें सर्वप्रथम छोटी कहानी के स्वरूप पर विचार किया गया था, यद्यपि उन्होंने 'शॉर्ट स्टोरी' पद का इस्तेमाल नहीं किया था। पो के बाद 1884 में अमेरिकी प्रोफेसर ब्रांडर मैथ्यूज ने 'द फिलॉसोफी ऑफ शॉर्ट स्टोरी' नामक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें उन्होंने इस उभरती हुई विधा को 'शॉर्ट स्टोरी' का नाम दिया। पो के बाद यूरोप और अमेरिका में कहानी का जो विकास हुआ है, उसे देखते हुए कोई एकल दृश्य, उपकथा, अनुभव, घटना, कार्य, किसी पात्र के चरित्र का अंशविशेष, किसी दिन की कोई मार्मिक घटना, कोई बैठक, कोई वार्तालाप, कोई मनःकल्पना, कोई मनोवैज्ञानिक क्षण...कुछ भी कहानी का विषय बन सकता है। पर अच्छी कहानी के लिए यह आवश्यक है कि उसमें संवेदना का

कोई मार्मिक बिन्दु या क्षण ही प्रस्तुत किया जाए। यदि किसी कहानी में ऐसा नहीं होता तो उसके प्रभाव के बिखर जाने की अधिक सम्भावना होती है। प्रविधि की दृष्टि से उपन्यास की कथा का अपेक्षाकृत व्यापक दिक् और काल में विकास होता है, जबकि कहानी में प्रसंगों की बहुलता या 'कथा' के व्यापक दिक्-काल में विकास की सम्भावना नहीं होती। आदर्श कहानी तो वह होती है, जिसमें केवल एक ही प्रसंग होता है, या अधिक से अधिक, मुख्य प्रसंग के इर्दगिर्द सहायक रूप में कुछ गौण प्रसंग होते हैं। यदि किसी मार्मिक संवेदना के क्षण को प्रस्तुत करने के लिए कथा का क्रम चलता भी है तो वह बहुत लम्बा या पेंचदार नहीं होता। कहानी का आकार तो छोटा होता ही है, उपन्यास की तरह उसमें दृश्य-निर्माण, वर्णन और वार्तालाप के लिए भी बहुत कम अवकाश होता है। उपन्यास की संरचना में एकाधिक अवलोकन-बिन्दुओं का उपयोग आम बात है, जबकि कहानी में इसके लिए बहुत कम गुंजाइश होती है। 'कहानी' में भाषा में वैविध्य की भी बहुत कम गुंजाइश होती है, पर भाषा का बहुत सावधान और सर्जनात्मक उपयोग अपरिहार्य होता है।

2.4.2 'छोटी कहानी' की परिभाषा

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार 'शॉर्ट स्टोरी' (छोटी कहानी) एक प्रकार की गद्यकथा है, जो सामान्यतः 'नॉवेल' (उपन्यास) और लघु उपन्यास की तुलना में अधिक सुसम्बद्ध और संकेन्द्रित या घनीभूत होती है। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व इसका विशिष्ट साहित्यिक विधा के रूप में अस्तित्व न था। लघु कथाओं का अस्तित्व वैसे तो बहुत प्राचीन और विश्वव्यापी है, पर 'छोटी कहानी' के नाम से जिस कथा-रूप का विकास यूरोप और यूनाइटेड स्टेट्स में, उन्नीसवीं शताब्दी में, हुआ वह अपने चरित्र में बिल्कुल नया था।

2.4.3 'छोटी कहानी' के रूप-निर्धारण में 'स्केच' और 'उपाख्यान' की भूमिका

'छोटी कहानी' के विकास में 'स्केच' और उपाख्यान('टेल') की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है। इन्हीं के भीतर आधुनिक छोटी कहानी (short story) विकसित हुई। 'उपाख्यान' 'स्केच' की तुलना में बहुत पुरानी विधा है। अपनी अन्य विशेषताओं के साथ 'स्केच' तथ्यात्मक और पत्रकारिता के गुणों से युक्त और 'उपाख्यान' की तुलना में सामान्यतः अधिक विश्लेषणात्मक और कम कथात्मक या नाटकीय होता है। स्केच का प्राथमिक रूप लिखित है ; उपाख्यान का मौखिक। यह अकेला अन्तर ही उनके अलग अलग तरह के प्रभाव का कारण बन जाता है। स्केच-लेखक वर्तमान और प्रत्यक्ष यथार्थ पर अपनी नजर रखता है, जबकि उपाख्यान दरबार या अलाव के चारों ओर बैठे श्रोताओं को सुनायी जाने वाली चीज होती थी, जो प्रायः अतीत की पुनःरचना होती थी। उन्नीसवीं शताब्दी में कुछ लेखकों ने—जिन्हें आधुनिक कहानी का 'जनक' कहा जा सकता है —निकोलाइ गोगोल, हॉथोर्न, ई.टी.ए. हॉफमान, हाइनरिख फॉन क्लाइस्ट, प्रोस्पर मेरिमी, पो आदि—स्केच के तत्त्वों के साथ उपाख्यान के तत्त्वों का मिश्रण करके एक नयी कथा-विधा को अस्तित्व में ला दिया, जो 'छोटी कहानी' के नाम से जानी गयी। यद्यपि इनमें से प्रत्येक लेखक ने यह मिश्रण अपने ढंग से किया पर सामान्य लक्ष्य कदाचित् उपाख्यान की फन्तासी और कल्पनात्मक उड़ान को थोड़ा मन्द और स्केच को उसकी कठोर तथ्यात्मकता के बन्धन से मुक्त करना था। इस प्रकार आधुनिक छोटी कहानी अतिकल्पनात्मक कथा (उपाख्यान) और फोटोग्राफीय स्केच के मध्य विचरण करती है और किसी न किसी रूप में दोनों के गुणों से युक्त होती है। उदाहरण के लिए अर्नेस्ट हेमिंग्वे की छोटी कहानियाँ प्रायः

परम्परागत मिथकीय प्रतीकों (पानी, मछली आदि) का उपयोग करके शक्ति अर्जित करती हैं, पर वे उपकथा की अपेक्षा स्केच के अधिक निकट हैं। इसके विपरीत उसी के समकालीन विलियम फॉकनर की कहानियाँ उपाख्यान के अधिक निकट प्रतीत होती हैं। पर जिस प्रकार अपनी कल्पनात्मक और प्रतीकात्मक विशेषताओं के कारण हेमिंग्वे की कथाएँ अखबारी रेखाचित्रों से विशिष्ट हैं, उसी प्रकार अपने खोजी और विश्लेषणात्मक गुणों के कारण फॉकनर की कथाएँ 'सॉदर्न टेल्स' से विशिष्ट हैं।

2.4.4 'छोटी कहानी' के उदय में साहित्यिक स्वच्छन्दतावाद और साहित्यिक यथार्थवाद की भूमिका

कुछ आलोचकों ने 'छोटी कहानी' के उदय के मूल में साहित्यिक स्वच्छन्दतावाद और साहित्यिक यथार्थवाद का योगदान देखा है। स्वच्छन्दतावाद ने छोटी कथा के भीतर उद्घाटित किये जा सकने वाले अद्भुत और असामान्य भावबोधों और उत्तेजनापूर्ण अनुभवों के प्रति रुचि जागृत की। एडगर एलेन पो की टेल्स ऑफ द ग्रोटेस्क ऐण्ड अरबेस्क (1840) इसी प्रकार की रचनाओं का संग्रह है। इसका प्रभाव न केवल अमेरिका के लेखकों पर, बल्कि यूरोप के, विशेषकर फ्रांस के, लेखकों पर भी पड़ा। जर्मनी में हाइनरिख वॉन क्लाइस्ट और इ. टी. ए. हॉफमान ने उपदेशकथाओं का उपयोग मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक प्रश्नों के उद्घाटन के लिए किया। कुछ बाद में अमेरिकी लेखकों, हॉथोर्न, मेलविल और हेनरी जेम्स ने घटनाओं और कार्यव्यापारों के स्थान पर वैयक्तिक संवेदनाओं पर आधारित कहानियाँ लिखीं। हेनरी जेम्स की द टर्न ऑफ द स्क्रियु (1898) इसका उल्लेखनीय उदाहरण है। इसी समय कथाकारों ने समकालीन परिस्थितियों पर असन्दिग्ध विश्वसनीयता के साथ लिखने का दायित्व सँभाला। फ्रांस में प्रॉस्पेर मेरिमे तटस्थ, व्यक्तिगत भावनिरपेक्ष पर्यवेक्षणयुक्त कहानियों का जनक माना जाता है। यह तकनीक मोपासाँ की, जो सामान्य आदमी की नीरस, अनुल्लेखनीय ज़िन्दगी में भी विशेष रूप से प्रकाशमान और उद्घाटक क्षण को पकड़ लेने में पटु था, कहानियों में भी दिखाई पड़ती है।

2.5 'छोटी कहानी' की अवधारणा के निर्धारण में यूरोप और संयुक्त राज्य (अमेरिका) की भूमिका

19वीं शताब्दी में आधुनिक 'छोटी कहानी' लगभग एक साथ जर्मनी, रूस, संयुक्त राज्य (अमेरिका) और रूस में विकसित हुई। इसके पूर्व सारे विश्व में आकार में छोटी कथा किसी न किसी रूप में विद्यमान थी, पर 'छोटी कहानी' या 'कहानी' नामक आधुनिक विधा के रूप में उसका विकास उन्नीसवीं शताब्दी में ही हो सका।

2.5.1 जर्मनी में 'छोटी कहानी'

जर्मनी में उत्तरवर्ती 18वीं शताब्दी की कथाओं और पुरानी बोकाचियो-परम्परा की कहानियों में कोई बहुत फर्क नहीं है। 1795 में गोएते ने शिलर के 'डी होरेन' नामक पत्रिका के लिए कुछ कहानियाँ लिखी थीं, जो स्पष्टतः 'डेकामेरन' को ध्यान में रखकर लिखी गयी थीं। उल्लेखनीय है कि गोएते ने अपनी कहानियों को 'छोटी कहानी' का नाम नहीं दिया था जबकि यह पद ('नोवालेन') प्रचलन में आ चुका था। इसके स्थान पर उसने अपनी कहानियों के लिए जर्मन सैलानियों के लिए 'मनबहलाव' पद का प्रयोग किया था। पर 1827 में, अपने ही 'मनबहलावों' के प्रकाशन के 32 वर्ष बाद, उसने पुरानी कथा और

नयी उभरती हुई कहानी पर टिप्पणी करते हुए दोनों के अन्तर पर जोर दिया। दो अन्य प्रमुख आलोचकों, किस्तोफ वीलान्द और फ्रेदरिख श्लीएरमाशेर ने इस बात पर बल दिया कि 'छोटी कहानी' का सरोकार ऐसी घटनाओं से होता है जो या तो घटित हैं या जिनके घटित होने की सम्भावना होती है। उनके अनुसार 'छोटी कहानी' का यथार्थवादी होना आवश्यक है। शायद इसी कारण हाइनरिख फॉन क्लाइस्ट और ई.टी.ए. हॉफमान ने अपनी प्रकृति-आधारित छोटी कथाओं को 'टेल्स' की संज्ञा दी। बहुत कुछ पो की तरह क्लाइस्ट ने अपनी कहानियों में अद्भुत और अव्यवस्था से भरे (केरॉटिक) संसार के साथ मनुष्य की मुठभेड़ के नाटकीकरण द्वारा अंशतः आध्यात्मिक और अंशतः मनोवैज्ञानिक मानवीय समस्याओं की अभिव्यक्ति की। अद्भुत-विचित्र स्थानों और अतिमानवीय तत्वों की रहस्यपूर्ण कहानियाँ अपने समय में हॉफमान की बहुत प्रभावी कहानियाँ थीं। एक दूसरे महत्वपूर्ण लेखक लुडविग टीक ने बहुत साफ शब्दों में यथार्थवाद को 'छोटी कहानी' का मूल तत्त्व मानने से इनकार किया। अपनी 1929 में प्रकाशित रचनावली की भूमिका में उसने छोटी कहानी को प्राथमिकतः 'घनत्व और व्यंग्यपूर्ण व्यवस्था-पलट की वस्तु' के रूप में देखा और उसे अपनी कहानियों में उद्धृत भी किया। उसने दावा किया, जब तक घटनाक्रम पात्र और परिस्थितियों के पूर्णतः मेल में है, कहानी को किसी भी बाहरी अर्थ में यथार्थवादी होने की जरूरत नहीं है। लेखक को भीतरी यथार्थ और क्रम का अनुसरण करने की छूट देकर टीक और उसके समानधर्मा लेखकों ने आधुनिक कहानी का रास्ता गैर-अखबारी तकनीकों के लिए खुला रखा।

2.5.2 फ्रांस में 'छोटी कहानी'

उन्नीसवीं शताब्दी में ही फ्रांस में प्रोस्पेर मेरिमी अपनी छोटी कहानियों के साथ सामने आया। मेरिमी की कहानियाँ 'तटस्थ और शुष्क अवलोकन' की उत्कृष्ट कलाकृतियाँ हैं, जिनका कथ्य, स्वयं में, संवेदनात्मक ऊर्जा से भरा हुआ है। फ्रांस में भी, अमेरिका की तरह ही, 19वीं शताब्दी में प्रचुर मात्रा में, और विविध प्रकार की, कहानियाँ लिखी गयीं, यद्यपि वहाँ प्रभाववादी कथा लिखने पर उतना जोर न रहा। 19वीं शताब्दी फ्रांस का एक उल्लेखनीय लेखक ड्यूडे अलफोन्से था, जिसकी कहानियाँ रोमानी, चित्रमय फन्तासी के लिए प्रसिद्ध हैं। पर फ्रांस का अब तक का सबसे बड़ा कहानीकार, वस्तुनिष्ठ छोटी कहानी का बादशाह, गाइ डि मोपासाँ मीना जाता है। मूलतः मोपासाँ की कहानियाँ दन्तकथाएँ हैं, जो मध्यवर्गीय नागरिकों के जीवन के उद्घाटक क्षणों को पकड़ती हैं। यही नाजुक क्षण एक सुसम्बद्ध कथानक में नियोजित किया जाता है। यद्यपि 'बॉल ऑफ टैलो' (1880) और 'नेकलेस' (1881) में कथानक जरूरत से ज्यादा गढ़ा हुआ, पलटा खा जाने वाली नियति बहुत सपाट और युक्ति अति स्पष्ट हो गयी है, पर 'द हाउस ऑफ मदाम तेलिए' (1881) जैसी कहानियों में मोपासाँ का सरल और तरल गद्य मानव व्यवहार की अकलुषता और भ्रष्टता दोनों को बहुत शक्तिशाली रूप में अभिव्यक्त करता है।

2.5.3 रूस में 'छोटी कहानी'

19वीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में, रूस में, फेबुल-लेखन का खूब प्रचलन था, जिसे गम्भीर रूप देने का श्रेय अलेक्जान्डर पुश्किन को है। बहुत कुछ फ्रांस के मेरिमी की तरह पुश्किन ने अपनी संवेगात्मक द्वन्द्व की कहानियों के लिए एक तटस्थ, बल्कि क्लासिकीय शैली विकसित की। उसका 'टेल्स ऑफ बाल्किन' नामक पाँच कहानियों का संग्रह 1830 में प्रकाशित हुआ तथा 'द कैप्टन्स डॉटर' (1831) और 'द क्वीन ऑफ स्पेड' (1834) ने उसे

रूसी कहानी के प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। पर रूसी 'छोटी कहानी' का वास्तविक आरम्भ निकोलाइ गोगोल की कहानियों से होता है। दोस्तोएव्स्की ने द्वयर्थक टिप्पणी की थी कि रूस के सारे छोटी कहानी-लेखक गोगोल के 'ओवरकोट' से निकले हैं। 'ओवरकोट' गोगोल की एक कहानी भी है। एक बिलकुल अपने ही अन्दाज में गोगोल, रूस में, अमेरिकी पो के प्रभाववादी तकनीक का विकास कर रहा था। गोगोल ने अपने अरबेक्स (1835) नामक कहानी-संग्रह में, पो की कथाओं की तरह ही, मनोभ्रम, भ्रमोत्पादक यथार्थ और स्वप्न की कथाएँ संकलित की थीं, जिनमें 'नेव्स्की प्रोस्पेक्ट' और 'डायरी ऑफ ए मैडमैन' (दोनों 1835) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। गोगोल की कहानियों में अपने समय में 'असाहित्यिक' समझे जाने वाले सामान्य जीवन की गहमागहमी पर यथार्थवादी ढंग से जोर देने के साथ साथ स्वप्न और 'विज्ञान' के द्वारा सृजित चेतना की दशाओं के आत्मगत उद्घाटन का प्रयास लक्षित हुआ। तुर्गनेव के रेखाचित्रों और चेखव की कहानियों में परिवेश और चेतनशीलता के विशेष क्षण वास्तविक रूप से घटित होने वाली घटनाओं से अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। प्रायः नियतिप्रेरित संयोगों के माध्यम से सृजित विशेष क्षण पर संकेन्द्रण से आश्चर्यजनक अन्त की सुविधा प्राप्त होती है, जो ओ' हेनरी की कहानियों में विशेष रूप से देखी जा सकती है।

गोगोल की 'ओवरकोट'(1842) उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रूस की सर्वाधिक प्रभावशाली कहानी मानी जाती है। यथार्थवाद के तत्त्वों (पात्रों के दैनिक जीवन के नैसर्गिक ब्योरे) के साथ फन्तासी के तत्त्वों (केन्द्रीय पात्र भूत के रूप में लौटता है) के मिश्रण द्वारा गोगोल की कहानी जो प्रभाव पैदा करती है, वह दोस्तोएव्स्की की 'अंडरग्राउंड मैन' के प्रभाववाद और तोल्सतोय की 'इवान इलिच' के यथार्थवाद दोनों को पूर्वाशित करती प्रतीत होती है।

रूस का एक दूसरा उल्लेखनीय कहानीकार इवान तुर्गनेव, पहली नजर में, गोगोल का बिलकुल उलट प्रतीत होता है। ए स्पोर्ट्समैनस नोटबुक (1852) में तुर्गनेव का सरल भाषा का प्रयोग, उसकी धीमी गति और उसका संयम उसे स्पष्टतः गोगोल से अलग करता है। पर गोगोल की तरह ही तुर्गनेव विस्तृत कथानक निर्मित करने की अपेक्षा लोगों और जगहों की विशेषताओं को पकड़ने में अधिक रुचि रखता था। तुर्गनेव किसी भी प्रकार की कृत्रिमता से बचता था। तटस्थ अवलोकन उसकी कहानियों का विशेष गुण है।

गोगोल की कुछ विशेषताओं को विकसित करते हुए पयोदोर दोस्तोएव्स्की ने प्रभाववादी कहानी में प्रयोग की दिशा अख्तियार की। उदाहरण के लिए उसकी आरम्भिक कहानी 'हवाइट नाइट्स'(1848), जैसा कि उपशीर्षक से ही स्पष्ट है, 'एक सपना देखने वाले की संस्मृति से निकली प्रेमकथा' है ; उसकी अन्तिम कहानियों में से एक, 'द ड्रीम ऑफ द रिडिकुलस मैन' (1877) का शीर्षक भी पो और गोगोल की याद दिलाता है। यद्यपि लेव तोल्सतोय भी मानवीय अभिप्रायों के अंकन में दोस्तोएव्स्की से अलग नहीं है, पर वह अपनी कहानियों में नितान्त भिन्न तकनीकों का प्रयोग करता है। वह अधिक तटस्थ और वस्तुनिष्ठ कथक के माध्यम से मनोवैज्ञानिक सत्य को अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है, जिसका श्रेष्ठ उदाहरण उसकी 'द डेथ ऑफ इवान इलिच' (1886) और 'द क्रियुत्जेर सोनाटा'(1891) जैसी कहानियाँ हैं।

एंटन चेखव की तुलना प्रायः मोपासाँ से की जाती है, पर सुगठित कथानक युक्त कहानी लिखने में उसकी रुचि न के बराबर है। वह वास्तव में वस्तुपरक कहानी का रूसी बादशाह है। चेखव की कहानियों में वास्तव में 'अधिक कुछ घटता हुआ' नहीं दिखाई पड़ता, यद्यपि उतने से ही उसके पात्रों और उनकी जिन्दगी के स्वरूप का बहुत कुछ

उद्घाटन हो जाता है। मोपासाँ घटना को फोकस करता है, जबकि चेखव की नजर चरित्र पर होती है। 'द ग्रास हॉपर' (टिड्डा, 1892), 'द डार्लिंग' (1898), 'इन द रवीन' (1900) आदि कहानियाँ चेखव के प्रत्यक्ष बोध (परसेप्शन), संवेदनशीलता तथा सूक्ष्म परिहास और व्यंग्य को बेहद प्रभावी रूप में व्यक्त करती हैं।

2.5.4 संयुक्त राज्य (अमेरिका) में 'छोटी कहानी'

युनाइटेड स्टेट्स में भी जर्मनी की तरह ही छोटी कहानी का विकास दो धाराओं में हुआ। एक धारा यथार्थवादी कहानी के रूप में सामने आयी जो वस्तुनिष्ठ ढंग से ऊपर से वास्तविक दिखने वाले स्थानों, घटनाओं और व्यक्तियों का चित्रण करती थी। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध की आंचलिक कहानियाँ (जिनमें जी. बी. केबल, ब्रेट हार्ट, सेरा ऑर्न जेवेट आदि की कहानियाँ भी शामिल हैं) इसी प्रकार की हैं। दूसरी धारा प्रभाववादी कहानियों की थी, जिनमें कथक की चेतना और मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति कथा को रूप और अर्थ प्रदान करती थी। आत्मनिष्ठता के तत्त्व पर आधारित ये कहानियाँ बाहरी तौर पर नाम मात्र को यथार्थवादी होती हैं। इसका उदाहरण पो की कथाएँ हैं जिनमें केन्द्रीय पात्र या कथक का मनोभ्रम (हैल्युशिनेशन) कहानी के तथ्य और ब्योरे उपलब्ध कराता है। उसकी एक कहानी 'द फॉल ऑफ द हाउस ऑफ अशर' (1839) का कथक जो कुछ देखता है, उसे इस प्रकार विकृत और रूपान्तरित कर देता है कि पाठक दृश्य को वस्तुपरक ढंग से देख ही नहीं सकता; वह केवल कथक के मन पर अंकित दृश्य के मनःप्रभावों को ही देखता है।

कुछ ऐसे लेखक भी हैं, जिन्होंने दोनों प्रकार की कहानियों के विकास में योगदान किया। वाशिंगटन इरविंग ने कतिपय यथार्थवादी स्केच (द स्केच-बुक, 1819-20; द अलहम्ब्रा, 1832) लिखे जिनमें उसने सावधानी के साथ पात्रों के रूप-रंग और कार्य-व्यापारों का दस्तावेजीकरण किया। इरविंग ने ऐसी कहानियाँ भी लिखीं जिनमें ब्योरे दृश्यमान यथार्थ से नहीं, वरन् पात्र की चेतना के भीतर से निकलते हैं। उदाहरण के लिए 'द स्टाउट जेन्टलमैन' (1821) की अधिकतर सामग्री कथक की उर्वर कल्पना द्वारा पुनःरूपित और ऊर्जीकृत है। एक अन्य लेखक हॉथोर्न की कहानियाँ (उदाहरणार्थ 'माइ किन्समैन, मेजर मोलिनुक्स', 1832) प्रतीकात्मक घटनाओं से सम्बद्ध हैं, जो केन्द्रीय पात्र द्वारा आत्मपरक रूप में देखी जाती हैं। पर हॉथोर्न की अधिक महत्वपूर्ण देन ऐसे दृश्यों, व्यक्तियों और घटनाओं की सृष्टि में है जो पाठक को वास्तविक ऐतिहासिक तथ्यों के रूप में दिखाई पड़ने के साथ साथ प्रतीकात्मक अभिप्राय से भी समृद्ध हैं।

2.6 सारांश

हिन्दी के कहानीकार, आलोचक और अध्यापक 'कथा' और 'कहानी' पदों का प्रयोग सुनिश्चित अर्थों में नहीं करते। ध्यातव्य है कि 'कहानी' का मूल रूप 'कथा' ही है। प्राकृत और अपभ्रंश में इसने 'कहा' का रूप लिया, जो बाद में 'कहानी' के रूप में प्रचलित हुआ।

भारत में गद्य में कथा रचने की परम्परा का आरम्भ विष्णु शर्मा कृत 'पंचतन्त्र' से हुआ, जिसे सुबन्धु, बाणभट्ट, दंडी आदि ने पूर्णता प्रदान की, पर उसके बाद यह परम्परा क्षीण हो गयी।

सन् 1900 ई. में 'सरस्वती' के साथ अँगरेजी की 'शॉर्ट स्टोरी' से प्रेरणा लेकर हिन्दी में 'आख्यायिका' नाम से लघु आकारी कथाओं का प्रकाशन शुरू हुआ, और इस प्रकार

पहली रचना किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' निकली। अगले दशक में इस प्रकार की लगभग एक दर्जन रचनाएँ प्रकाशित हुईं। यद्यपि प्रेमचन्द ने 1908 में अपनी रचनाओं को 'कहानी' कहा, पर अन्य हिन्दी पत्रिकाओं में प्रकाशित ऐसी रचनाओं के लिए 'आख्यायिका' और 'गल्प' पद प्रचलित रहे। सर्वप्रथम रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में 'शॉर्ट स्टोरी' के लिए 'छोटी कहानी' पद के प्रयोग पर जोर दिया और उसके बाद यह पद लगभग मान्य हो गया।

'छोटी कहानी' को किसी बने-बनाये साँचे में ढली हुई परिभाषा में बाँधना सम्भव नहीं है। यह एक विकासमान विधा है और अभी उसकी विकास-प्रक्रिया जारी है। 'छोटी कहानी' पद में उसके, आकार की दृष्टि से, 'छोटा' होने का भाव निहित है। पर 'छोटा' और 'बड़ा' शब्द सापेक्ष हैं और उनका कोई निश्चित मापदंड नहीं निर्धारित किया जा सकता। 'लघु कथा', 'कहानी', 'लम्बी कहानी', 'उपन्यासिका', 'लघु उपन्यास' और 'उपन्यास' के बीच की दूरी इतनी लचीली रखी जा सकती है, जिसके बीच ये विधाएँ, आवश्यक होने पर, आवाजाही कर सकें।

पर आकार 'कहानी' की पहचान का एक बहुत स्थूल मानक ही बन सकता है। अँगरेजी आलोचको द्वारा 'शार्ट स्टोरी' की पहचान ऐसी संक्षिप्त गद्यकथा के रूप में की गयी है, जो 'नॉवेल', 'एपिक' और 'रोमांस' जैसे बृहदाकार, व्यापक फलक वाले कथा-रूपों से भिन्न होती है। 'शॉर्ट स्टोरी' का उद्देश्य किसी एकल प्रभाव की सृष्टि करना होता है। उसमें कोई एकल कथानक, कोई एकल दृश्य और सीमित संख्या में पात्र होते हैं तथा वह छोटी कालावधि में नियोजित होती है।

कहानी में नये-नये प्रयोग होते रहे हैं, आज भी हो रहे हैं और कहानी का रूप नव्य से नव्यतर होता रहा है। संरचना की दृष्टि से चौथे दशक में हिन्दी कहानी प्रौढ़ता पर पहुँच गयी, जिसका श्रेय प्रेमचन्द के साथ जैनेन्द्र और अज्ञेय को है।

आधुनिक कहानी का उद्देश्य मनोरंजन या किसी नैतिक मूल्य का प्रतिपादन नहीं रह गया है। आयरिश कहानी-लेखक फ्रैंक ओ' कोनोर का मानना है कि कहानियाँ 'सतह के नीचे छिपे आबादी-समूह' द्वारा प्रभुत्वसम्पन्न समुदाय को सम्बोधित करने का साधन हैं। हिन्दी के आरम्भिक कहानीकारों ने भी इसका अनुभव किया था और उन्होंने कमोबेश मात्रा में समकालीन स्त्री की पीड़ा और पुकार को प्रभुत्वसम्पन्न पुरुष समाज तक पहुँचाने का प्रयास किया था तथा औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध दमित शासित वर्ग की व्यथा और विद्रोह को वाणी दी थी।

'छोटी कहानी' के विकास में 'स्केच' और उपाख्यान('टेल') की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है। निकोलाइ गोगोल, हॉथोर्न, ई.टी.ए. हॉफमान, हाइनरिख फॉन क्लाइस्ट, प्रोस्पेर मेरिमी, पो आदि ने स्केच के तत्त्वों के साथ उपाख्यान के तत्त्वों का मिश्रण करके 'छोटी कहानी' को अस्तित्व में ला दिया।

कुछ आलोचकों के अनुसार 'छोटी कहानी' के उदय के मूल में साहित्यिक स्वच्छन्दतावाद और साहित्यिक यथार्थवाद दोनों का योगदान है। स्वच्छन्दतावाद ने छोटी कथा के भीतर उद्घाटित किये जा सकने वाले अद्भुत और असामान्य भावबोधों और उत्तेजनापूर्ण अनुभवों के प्रति रुचि जागृत की। यथार्थवाद ने समकालीन परिस्थितियों पर असन्दिग्ध विश्वसनीयता के साथ लिखने की प्रेरणा दी।

19वीं शताब्दी में आधुनिक 'छोटी कहानी' लगभग एक साथ जर्मनी, रूस, संयुक्त राज्य (अमेरिका) और रूस में विकसित हुई। जर्मनी के गोएते, हाइनरिख फॉन क्लाइस्ट, ई.टी. ए. हॉफमान और लुडविग टीक, फ्रांस के प्रोस्पे मेरिमी, ड्यूडे अलफोन्से और गाइ डि मोपासाँ, रूस के अलेक्जेंडर पुश्किन, निकोलाइ गोगोल, इवान तुर्गनेव, योदोर दोस्तोएव्सकी, लेव तोल्सतोय और एंटन चेखव तथा युनाइटेड स्टेट्स के जी. बी. केबल, ब्रेट हार्ट, सेरा ऑर्नजेवेट, एडगर एलेन पो, वाशिंगटन इरविंग, हॉथोर्न आदि ने 'कहानी' को आधुनिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया।

अभ्यास

1. 'कहानी' और 'कथा' के पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रकाश डालिए।
2. आधुनिक विधा के रूप में 'कहानी' के उद्भव पर प्रकाश डालिए।
3. 'शार्ट स्टोरी' अथवा 'कहानी' की अवधारणा का विवेचन कीजिए।
4. 'कहानी' और 'उपन्यास' का अन्तर स्पष्ट करते हुए 'कहानी' के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
5. 'छोटी कहानी' के उद्भव में 'स्केच' और 'उपाख्यान', 'स्वच्छन्दतावाद' और 'यथार्थवाद' की भूमिका का निर्देश कीजिए।
6. 'छोटी कहानी' की अवधारणा के निर्धारण में यूरोप और संयुक्त राज्य (अमेरिका) के योगदान का विवेचन कीजिए।

इकाई 3 कहानी और अन्य गद्य विधाएँ

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 गद्य विधाओं का सामान्य परिचय

3.2.1 उपन्यास

3.2.2 कहानी

3.2.3 नाटक

3.2.4 रेखाचित्र (स्केच)

3.2.5 आत्मकथा

3.2.6 संस्मरण

3.2.7 ललित निबन्ध

3.2.8 फीचर

3.2.9 रिपोर्टाज

3.3 कहानी और उपन्यास

3.4 कहानी और नाटक

3.5 कहानी और रेखाचित्र

3.6 कहानी और अन्य गौण गद्य विधाएँ

3.6.1 कहानी और आत्मकथा

3.6.2 कहानी और संस्मरण

3.6.3 कहानी और ललित निबन्ध

3.6.4 कहानी और फीचर

3.6.5 कहानी और रिपोर्टाज

3.7 सारांश

अभ्यास

3.0 उद्देश्य

यह एम. ए. हिन्दी के द्वितीय वर्ष के कहानी से सम्बन्धित माड्यूल के पाठ्यक्रम 'कहानी : स्वरूप और विकास' से सम्बन्धित खंड-1 की तीसरी इकाई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- गद्य विधाओं के अन्तर्गत आने वाली विधाओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगी/सकेंगे।
- कहानी और उपन्यास में क्या फर्क है, इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगी/सकेंगे।

- कहानी और नाटक में क्या फर्क है, इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगी/सकेंगे;
- कहानी और रेखाचित्र (स्केच) के अन्तर को समझ सकेंगी/सकेंगे;
- कहानी और संस्मरण के अन्तर को समझ सकेंगी/सकेंगे;
- कहानी और आत्मकथा के अन्तर को समझ सकेंगी/सकेंगे;
- कहानी और फीचर तथा कहानी और रिपोर्टाज का अन्तर जान सकेंगी/सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

इस इकाई में सर्वप्रथम गद्य विधाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। संसार की सभी भाषाओं में साहित्य के अध्ययन की सुविधा के लिए उसका विधाओं में विभाजन और विवेचन जरूरी समझा गया है। यद्यपि कुछ रचनाकारों और आलोचकों ने इस विभाजन को अनावश्यक माना है, पर यह अतिवादी दृष्टिकोण है। विधाओं का परस्पर मिश्रण और एक दूसरे के क्षेत्र में आवाजाही प्रयोगात्मक दृष्टि से अवांछनीय नहीं माना जा सकता, पर उसके अशंसन के लिए विधाओं की स्पष्ट पहचान बहुत जरूरी है।

इस इकाई में विधाओं के संक्षिप्त परिचय के बाद कहानी का 'उपन्यास', 'नाटक', 'रेखाचित्र', 'आत्मकथा', 'संस्मरण', 'ललित निबन्ध', 'फीचर', 'रिपोर्टाज' आदि से अन्तर बताया गया है। इससे छात्रों/छात्राओं को 'कहानी' के स्वरूप को समझने और आशंसन करने में सहायता मिलेगी, इसकी उम्मीद है।

3.2 गद्य विधाओं का सामान्य परिचय

साहित्य के सम्यक् और सुचारु रूप से अध्ययन के लिए काव्यशास्त्र या आलोचना-शास्त्र द्वारा उसका वर्गीकरण परम्परा से होता आया है। संस्कृत काव्यशास्त्र में 'श्रव्य काव्य', 'दृश्य काव्य', 'महाकाव्य', 'प्रबन्ध काव्य', 'मुक्तक काव्य', 'रूपक' और उसके अनेक भेद, गद्य काव्य, 'चम्पू काव्य' आदि इसके उदाहरण हैं। अंगरेजी में भी साहित्य के 'एपिक', 'लिरिक', 'ड्रामा', 'नॉवेल' 'शॉर्ट स्टोरी' आदि विभाजन किये गये हैं। कहना चाहिए कि दुनिया की प्रायः सभी भाषाओं में इस प्रकार के विभाजन साहित्य के अध्ययन की सुविधा के निमित्त प्रचलित हैं। कतिपय आधुनिक आलोचक और रचनाकार इस विभाजन को अनावश्यक मानने लगे हैं। उनके अनुसार साहित्य को उसकी समग्रता में ही समझने का प्रयास करना चाहिए, न कि उसे अलग अलग खंडों में बाँटकर। उनका मानना है कि श्रेष्ठ रचनाकार विधाओं के मिश्रण, उनके बीच परस्पर 'आवाजाही' में विश्वास करते हैं, न कि साहित्य को खंडों में विभाजित करके रचना में प्रवृत्त होते हैं। कतिपय रचनाकारों ने तो इस वर्गीकरण का दृढ़तापूर्वक विरोध भी किया है।

पर वास्तविकता यह है कि 'उपन्यास', 'कहानी', 'नाटक', 'रेखाचित्र', 'संस्मरण', 'ललित निबन्ध' आदि गद्य विधाओं में अन्तर है। यह अवश्य है कि कुछ प्रतिभाशाली लेखक विधाओं के इस भेद को स्वीकार नहीं करते और इनका रचनात्मक स्तर पर कुशल सम्मिश्रण करते हैं, पर इस सम्मिश्रण का भी अनुशंसन करने के लिए विधाओं की अलग-अलग पहचान जरूरी है। बिना इस पहचान के विधाओं के एक-दूसरे के क्षेत्र में 'आवाजाही' का कौशल समझ में नहीं आ सकता। अतः हम इस बात का प्रयास करेंगे कि गद्य विधाओं के आपसी भेद को स्पष्टता के साथ समझा जाए।

3.2.1 उपन्यास

मोटे तौर पर उपन्यास उस अपेक्षाकृत बड़े आकार की रचना को कहा जाता है, जो गद्य में रचित होती है, जिसमें एक कल्पनाप्रसूत पर यथार्थ संसार होता है, और जो नवीन होती है। इसमें सन्देह नहीं कि 'उपन्यास' जैसी सतत विकासमान विधा को इस स्थूल परिभाषा में समेटा नहीं जा सकता। 'पहचान' की दृष्टि से भी इसकी सीमाएँ स्पष्ट हैं। इसके आकार की कोई सर्वमान्य सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। इसका अधिकतम आकार तो कुछ भी हो सकता है। निम्नतम आकार-सीमा के बारे में भी कोई सुनिश्चित शब्द-संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती। ई. एम. फोर्स्टर ने उपन्यास की निम्नतम आकार-सीमा 50000 शब्द मानने का सुझाव दिया है, पर यह एक मानने योग्य सुझाव भर ही है।

उपन्यास स्वीकृत रूप में एक गद्य विधा ही है, पर कुछ लेखक इसे भी चुनौती देते दीखते हैं। विक्रम सेठ ने, जो अँगरेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं, पद्य में एक उपन्यास लिख मारा है पर सामान्यतः उपन्यास को गद्य-विधा के रूप में ही स्वीकृति प्राप्त है।

उपन्यास की कथा कल्पनाप्रसूत हो इसे लेकर तो कोई विवाद नहीं है, पर वह 'यथार्थ' हो ही, इस धारणा से सभी रचनाकार और आलोचक एकमत नहीं हैं। 'यथार्थ' की अवधारणा को लेकर रचनाकारों और आलोचकों में बहुत मतभेद है।

इन सारे मतभेदों के बावजूद 'उपन्यास' की पहचान के लिए उसका 'अपेक्षाकृत' बड़े आकार का होना, गद्य में लिखा जाना, कल्पनाप्रसूत होना, यथार्थ के प्रति—भले ही वह 'जादुई' ही क्यों न हो—निष्ठावान और नया होना आवश्यक है। आपवादिक रूप में भले ही इन मानकों से उलट रचनाएँ लिखी जाएँ, पर वे अपवाद ही होंगी, नियम नहीं।

3.2.2 कहानी

कहानी के स्वरूप का विवेचन हम इसी खंड की इकाई-2 में कर चुके हैं, अतः उसे दुहराने की यहाँ कोई जरूरत नहीं है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'उपन्यास' और 'कहानी', दोनों, गद्य में रचित होने वाली विधाएँ हैं ; कहानी का भी कथा-संसार कल्पनाप्रसूत और यथार्थ होता है ; पर 'उपन्यास' की अपेक्षा 'कहानी' का आकार बहुत छोटा, उसका कथा-संसार भी जीवन का एक अंश या टुकड़ा मात्र होता है।

3.2.3 नाटक

नाटक गद्य और पद्य दोनों में, अलग अलग और मिश्रित रूप में भी, रचित होता है। यह संसार की सारी समृद्ध भाषाओं में अत्यन्त प्राचीन, समृद्ध और वैविध्यपूर्ण विधा है। भारत में भी 'दृश्य काव्य' की परम्परा बहुत प्राचीन, समृद्ध और वैविध्यपूर्ण है। इसकी मुख्य पहचान यह है कि यह संवादों में रचित होता है। रंग-निर्देश इसकी अपनी खास पहचान है। इसका कथ्य ऐतिहासिक, कल्पनाप्रसूत, यथार्थ, मिथकीय कुछ भी हो सकता है।

3.2.4 रेखाचित्र (स्केच)

'रेखाचित्र' पद अँगरेजी के 'स्केच' के वजन पर गढ़ा गया पद है। 'स्केच' मूलतः चित्रकला का एक अंग है। इसमें चित्रकार कुछ इनीगिनी रेखाओं द्वारा किसी वस्तु, व्यक्ति या दृश्य को अंकित करता है। रंगों का प्रयोग इसमें एकदम नहीं होता और

आकृतियाँ भी कभी-कभी संकेतित होकर रह जाती हैं। उदाहरण के लिए महात्मा गाँधी का रेखाचित्र उनके चशमों, लाठी और मुस्कान की रेखाओं द्वारा ही पूरा हो जाता है। साहित्य में जिसे 'रेखाचित्र' कहते हैं, उसमें भी कम से कम शब्दों में किसी वस्तु, व्यक्ति या दृश्य का अंकन किया जाता है। चित्र और साहित्य में अन्तर यह है कि जहाँ चित्र में रेखाओं का प्रयोग किया जाता है, वहाँ साहित्य में कम से कम शब्दों का। 'रेखाचित्र' में वर्णन की बहुलता, सजावटी या अलंकृत भाषा या शैली का चमत्कार अपेक्षित नहीं होता। इसीलिए 'रेखाचित्र' को 'शब्दचित्र' भी कहा जाता है।

'रेखाचित्र' की एक विशेषता यह भी है कि उसके विषय—व्यक्ति, वस्तु या दृश्य—वास्तविक अनुभव से जुड़े होते हैं। वहाँ कल्पना की अधिक गुंजायश नहीं होती। डॉ. सिद्धनाथ कुमार के अनुसार 'रेखाचित्र पूर्ण चित्र नहीं है—वह व्यक्ति, वस्तु, घटना आदि का एक निश्चित दृष्टिबिन्दु से प्रस्तुत किया गया प्रतिबिम्ब है, जिसमें विवरण की न्यूनता के साथ साथ तीव्र संवेदन शीलता वर्तमान रहती है। रेखाचित्र के लिए विषय का कोई बन्धन नहीं होता। इसमें सभी प्रकार के विषयों का समावेश सम्भव है। व्यक्ति के स्थान पर इसमें पशु-पक्षी, वस्तु के रूप में कोई प्राकृतिक दृश्य और घटना के रूप में कोई रोचक प्रसंग लिया जा सकता है।

3.2.5 आत्मकथा

जब कोई लेखक 'मैं' शैली में अपनी जीवनी लिखता है तो उसे 'आत्मकथा' की संज्ञा दी जाती है। आत्मकथा का सबसे बड़ा गुण लेखक की ईमानदारी माना जाता है। वह न तो अपने जीवन से सम्बंधित कोई तथ्य छिपाता है, न ही, आत्मप्रशंसा के लिए प्रच्छन्न प्रयास करता है। आत्मकथा में सबकुछ तथ्य ही अपेक्षित है, कल्पना के लिए उसमें कोई जगह नहीं होती।

3.2.6 संस्मरण

संस्मरण वह साहित्यिक विधा है, जिसमें लेखक अपने अनुभव जगत् के किसी व्यक्ति, दृश्य या प्रसंग को संवेदनात्मक तीव्रता के साथ प्रस्तुत करता है। व्यापक रूप से यह आत्मचरित के अन्तर्गत आता है। संस्मरण-लेखक अपने निजी अनुभवों को ही लिखित रूप देता है और कल्पना के लिए इसमें कोई गुंजाइश नहीं होती। संस्मरण-लेखक यदि अपने सम्बन्ध में लिखता है तो वह आत्मकथा के और यदि वह अन्य व्यक्तियों के सम्बन्ध लिखता है तो वह जीवनी के निकट होता है। इन दो प्रकार के संस्मरणों को अँगरेजी में क्रमशः 'रेमिनिसेन्सेज' और 'मेम्वायर्स' कहा जाता है।

3.2.7 ललित निबन्ध

चेतना की उन्मुक्त उड़ान की ललित शैली में अभिव्यक्ति को 'ललित निबन्ध' कहा जाता है। इसमें विषय का कोई बन्धन नहीं होता और न ही उसकी कोई सीमा निर्धारित होती है।

3.2.8 फीचर

'फीचर' के लिए हिन्दी में कोई सटीक पर्याय उपलब्ध नहीं है। हिन्दी में यह विधा भी नयी ही है। इस पद का विधा विशेष के लिए प्रथम प्रयोग बी.बी.सी., लन्दन ने करना आरम्भ किया था। डॉ. सिद्धनाथ कुमार के अनुसार बीसवीं सदी के चौथे दशक के आरम्भ में बी.

बी.सी., लन्दन के नाटक विभाग ने 'यथातथ्य सूचनाओं पर आधारित रचना' के लिए 'फीचर' नामक डाक्यूमेन्ट्री का आरम्भ किया। यह कार्यक्रम विशेष अवसरों पर प्रसारण के लिए तैयार किया जाता था। हिन्दी में भी जब आकाशवाणी के माध्यम से ऐसे कार्यक्रमों (स्वाधीनता-दिवस, रवीन्द्र दिवस, प्रसाद जयन्ती आदि) की आवश्यकता पड़ी तो बी.बी.सी. के अनुकरण पर 'रेडियो फीचर' तैयार और प्रसारित किये जाने लगे। आरम्भ में 'फीचर प्रोग्राम' का अर्थ विशेष कार्यक्रम ही था, पर धीरे-धीरे उसके अन्तर्गत वे सभी रचनाएँ आने लगीं, जो रेडियो टेकनीक की दिशा में कुछ नये प्रयोगों के लिए लिखी जाती थीं। इन प्रयोगशील कार्यक्रमों का झुकाव कल्पनाप्रधान रचनाओं की ओर कम, तथ्यप्रधान रचनाओं की ओर अधिक था।

अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि एवं नाटककार लुई मेकनीस ने 'फीचर' को वास्तविकता का नाटकीकृत रूप कहा है। वास्तविकता का तात्पर्य यहाँ वास्तविक घटनाओं और तथ्यों से है। लॉरेन्स गिलियन के, जो बी.बी.सी. के आलेख-रूपक विभाग से सम्बद्ध थे, अनुसार 'फीचर' तथ्य पर आधारित होता है, 'नाटक' कल्पना पर। रेडियो फीचरों में सभी प्रकार की वास्तविकताओं का नाटकीकृत रूप में उपस्थित किया जाता है।

हिन्दी में 'फीचर' को 'रेडियो रूपक' का नाम दिया गया। डॉ. सिद्धनाथ कुमार के अनुसार रेडियो रूपक एक स्वतन्त्र कला है, जो नाटक आदि के स्वरूप-विधानों से पूर्णतः पृथक् है। उन्होंने एच. आर. विलियंशन के साक्ष्य से बताया है कि यदि रेडियो के पास अपनी कोई कला है, जिसका निर्माण केवल रेडियो ने किया है, तो वह 'फीचर' है।

3.2.9 रिपोर्टाज

रिपोर्टाज फ्रांसीसी भाषा का शब्द है, जिसे अंग्रेजी ने भी अपना लिया है। हिन्दी में भी यह पद स्वीकृत हो गया है। इसका 'रिपोर्ट' शब्द से घनिष्ठ सम्बन्ध है। रिपोर्ट किसी घटना के तथातथ्य, प्रामाणिक वर्णन को कहते हैं। रिपोर्ट सामान्यतः समाचारपत्र के लिए लिखी जाती है और उससे किसी प्रकार के साहित्यिक लालित्य की अपेक्षा नहीं की जाती। रिपोर्ट के साहित्यिक और कलात्मक रूप को ही 'रिपोर्टाज' कहा जाता है। वस्तुगत तथ्य की ललित शैली में प्रभावोत्पादक प्रस्तुति रिपोर्टाज की पहचान है। इसमें कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं होता। आँखों-देखी और कानों-सुनी घटनाओं पर ही रिपोर्टाज लिखे जाते हैं। पर इसकी प्रस्तुति में शैलीगत प्रभविष्णुता और लालित्य आवश्यक होता है। रिपोर्टाज-लेखक को पत्रकार तथा रचनाकार के दोहरे दायित्व का निर्वाह करना पड़ता है। इस विधा का विकास यूरोप में युद्धविषयक घटनाओं की रपट के सन्दर्भ में हुआ था। द्वितीय विश्वयुद्ध में यूरोप में, विशेषतः रूस में, इसका विकास साहित्यिक विधा के रूप में हुआ। बाद में इसका विस्तार जन-उत्सवों, मेलों, बाढ़, अकाल या प्राकृतिक विपत्तियों की रपटों से भी जुड़ गया। रूसी लेखक एलिया एहरनबुर्ग को रिपोर्टाज लेखक के रूप में अजेय ख्याति मिली। हिन्दी में 1943 के बंगाल के अकाल और 1971 के बाँगलादेश मुक्ति-संग्राम के समय रिपोर्टाज लिखे गये और उन्हें साहित्यिक मान्यता प्राप्त हुई।

3.3 कहानी और उपन्यास

जिन गद्य विधाओं में सर्वाधिक समानता है, वे हैं 'उपन्यास' और 'कहानी'। वस्तुतः मूलतः ये दोनों एक ही व्यापक प्रजाति की विधाएँ हैं। ये दोनों ही विधाएँ 'कथा' की सन्तान हैं। 'कथा' के विकास की पहली कड़ी 'उपन्यास' और उसकी अगली कड़ी 'कहानी' है।

संसार की लगभग सारी भाषाओं में 'कहानी' का उद्भव भी 'उपन्यास' के बाद हुआ है। कथ्य की दृष्टि से इनमें कोई मौलिक अन्तर नहीं है। इनकी पहचान का सबसे स्थूल आधार तो इनका आकार ही है। मोटे तौर पर कहा जाता है कि 'उपन्यास' का आकार अपेक्षाकृत 'बड़ा' और 'कहानी' का आकार 'छोटा' होता है। यद्यपि 'आकार' के बड़ा-छोटा होने का कोई कटा-छँटा, पूर्णतः तर्कसंगत आधार निर्धारित नहीं है, पर उपन्यास की अधिकतम सीमा हजारों पृष्ठों तक जा सकती है। यह उपन्यासकार के 'विज्ञान' और कथ्य की व्यापकता पर निर्भर है। पर उसकी निम्नतम आकार-सीमा क्या हो, यह विवादास्पद होने पर भी विचारणीय है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार और आलोचक ई. एम. फोर्स्टर ने उपन्यास की निम्नतम सीमा 50000 शब्दों तक निर्धारित करने का सुझाव दिया है और मेरी समझ से यह एक कामचलाऊ अच्छा नुस्खा है। पर यह स्मरण रखने की बात है कि यह शब्द-सीमा कठोर और नितान्त अनमनीय नहीं मानी जा सकती। हाँ, यह शब्द-सीमा इसके इर्द-गिर्द ही होनी चाहिए।

'कहानी' की आकार-सीमा उपन्यास से भी अधिक विवादास्पद है। इसका सविस्तार उल्लेख इस खंड की दूसरी इकाई में किया गया है। कुछ परिभाषाएँ इसकी अधिकतम शब्द-संख्या 7,500 निर्धारित करती हैं। सामान्य व्यवहार में "शॉर्ट स्टोरी" पद वैसी कथा-रचनाओं को निर्देशित करता है, जिनमें अधिकतम 20,000 और न्यूनतम 1,000 शब्द हों। एक हजार से कम शब्दवाली कहानियों को अंग्रेजी में 'लैस फिक्शन', 'शॉर्ट शॉर्ट स्टोरी' या 'माइक्रो स्टोरी' नाम से जाना जाता है और 20,000 शब्दों से अधिक आकारवाली कथाओं को 'नॉवेलेट', 'नोवेल' या 'नॉवेल' कहते हैं। हमने सभी मतों का ध्यान रखते हुए 'लघु कथा' (अंग्रेजी 'लैस फिक्शन', उर्दू 'अफसाना', बँगला 'लोघु लोघु गोल्पो') की शब्द-संख्या 150-300, 'कहानी' (अंग्रेजी 'शॉर्ट स्टोरी') की शब्द-संख्या 1000-3000, और 'लम्बी कहानी' की शब्द-संख्या 4000-15,000 प्रस्तावित की जा सकती है। 'लघु-कथा', 'कहानी', 'लम्बी कहानी', 'उपन्यासिका', 'लघु उपन्यास' और 'उपन्यास' के बीच की दूरी इतनी लचीली रखी जा सकती है, जिसके बीच ये विधाएँ, आवश्यक होने पर, आवाजाही कर सकें।

हिन्दी के एक उल्लेखनीय कहानीकार, उदय प्रकाश, अपनी कहानियों के बारे में लिखते हैं कि "कुछ कहानियाँ बहुत लम्बी हैं—लगभग उपन्यास की सरहदों को छूती हुई। कुछ आलोचक इन्हें कहानियाँ मानने से इनकार करते हुए, उन्हें 'नॉवेल' (लघु उपन्यास) घोषित करते हैं। 'पीली छतरी वाली लड़की', 'वारेन हेस्टिंग्स का सांड', या 'और अन्त में प्रार्थना' ऐसे ही लम्बे आख्यान हैं। लेकिन मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि इन रचनाओं का गठन, इनका विन्यास और इनकी आन्तरिक संरचना उपन्यास की तरह नहीं है। साधारण प्रचलित कहानियों के मुकाबले कई बार लगभग दसगुना लम्बी ये कहानियाँ इतने पृष्ठों के विस्तार के बावजूद अपनी गति और आन्तरिक बनावट में अन्ततः कहानियाँ ही हैं, 'लघु' या 'दीर्घ' उपन्यास नहीं।.....इसी तरह मेरी कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं, जो मुश्किल से कुछ वाक्यों में ही समाप्त हो जाती हैं या अधिक से अधिक एक-दो पैराग्राफ में। लेकिन इतनी संक्षिप्त और छोटी होने के बावजूद वे कहानी ही हैं, 'लघुकथा', 'पैरेबल्स' या 'फेबल्स' नहीं। उनकी अन्विति, संरचना और अन्तिम प्रभाव कहानी जैसा ही है। शायद किसी गद्य में लिखे गये रूपक-काव्य के करीब पहुँचती हुई कहानी।.....पिछले कई वर्षों तो मैं कुछ ऐसी कहानियाँ भी लिखने के फेर में हूँ जो एक वाक्य के पूरा होने के पहले ही पूरी होकर समाप्त हो जाएं। लेकिन तब भी उनमें अपने समय के जीवन की मार्मिक और अर्थपूर्ण अनुगूँजें हों।" इस कथन से स्पष्ट है कि उदय प्रकाश आकार की दृष्टि से 'कहानी', 'उपन्यास' और 'रूपक-काव्य' के अन्तर को स्वीकार नहीं करते। पर

‘गठन’ ‘विन्यास’, ‘आन्तरिक संरचना’, ‘गति’, ‘आन्तरिक बनावट’ आदि जुमलों से उनका तात्पर्य क्या है, यह स्पष्ट नहीं है। अभी तक उन्होंने कोई ऐसी ‘कहानी’ भी नहीं लिखी है, जो ‘एक वाक्य के पूरा होने के पहले ही पूरी होकर समाप्त हो जाए’ और इसके बावजूद उसमें ‘अपने समय के जीवन की मार्मिक और अर्थपूर्ण अनुगूँजें हों।’ मेरी दृष्टि में यह अतिकथन है ; अपने को अन्य कहानीकारों से अलग करने का एक आत्मविश्वासपरक प्रयास।

‘कहानी’ और ‘उपन्यास’ के अन्तर का एक विश्वसनीय आधार यह है कि उपन्यास में कथा विकासमान होती है, जबकि ‘कहानी’ में वह किसी एकल प्रसंग तक सीमित होती है। यद्यपि ऐसे उपन्यासों की भी कोई कमी नहीं है, जिनमें कथा का कोई विकास नहीं होता, वह किसी एक दिक् और काल में कीलित होती है, उदाहरणार्थ जेम्स जॉयस का यूलिसिस या मार्शल पू और वर्जिनिया वूल्फ के उपन्यास। पर ये उपन्यास आपवादिक प्रयोग के रूप में हैं। इनकी गिनती सामान्य उपन्यासों में नहीं होती। हिन्दी में भी कृष्ण बलदेव वैद के उपन्यास लगभग ऐसे ही हैं।

आदर्श ‘कहानी’ की पहचान यह है कि उसमें ‘कथा’ हो ही नहीं, वह किसी कालबिन्दु में कीलित किसी मानवीय कार्यव्यापार या प्रसंग के रूप में हो। रूसी कहानीकार चेखव की कहानियाँ इस दृष्टि से इस आदर्श के निकट पहुँचती हैं। हिन्दी के अमरकान्त की ‘दोपहर का भोजन’ भी इस आदर्श के बहुत निकट जाती दिखाई पड़ती है। पर यह आदर्श अधिकतर कहानियों के लिए बहुत भारी पड़ता है। प्रेमचन्द की अधिकतर कहानियाँ किसी एक प्रसंग और चौबीस घंटे से कम की काल-सीमा का पालन तो करती हैं, पर वे उक्त आदर्श का पालन नहीं करतीं। वस्तुतः हिन्दी की अधिकतर कहानियाँ ‘कथा’ के इस दूसरे मानदंड का ही अनुगमन करती हैं। हिन्दी की ‘अकहानी’ धारा की कहानियों में ‘कथा’ को सिरे से ही अस्वीकार करने और दिक्-काल के बन्धनों को न मानने की प्रवृत्ति लक्षित होती है, पर वह हिन्दी कहानी की स्वीकृत प्रवृत्ति नहीं है। अतः ‘कथा’ की दृष्टि से ‘उपन्यास’ और ‘कहानी’ का अन्तर यह स्वीकार किया जा सकता है कि उपन्यास में शुद्ध ‘कथा’ तो नहीं, पर मानवीय कार्यव्यापार को प्रस्तुत करने वाली कथा का दिक् और काल की दृष्टि से विकास और विस्तार अपेक्षित होता है जबकि ‘कहानी’ में ‘कथा’ के लिए तो कोई गुंजाइश होती ही नहीं और मानवीय कार्यव्यापार भी सीमित काल(जैसे कुछ मिनटों से लेकर 24 घंटों के भीतर) और दिक् (किसी एक स्थान या अधिक से अधिक दो-तीन जगहों तक) में कीलित हों, उससे बाहर न निकलें।

कथ्य की दृष्टि से कहानी-उपन्यास में साम्य है। दोनों जीवन-यथार्थ का चित्रण करते हैं। अन्तर यह है कि उपन्यास में प्रस्तुत जीवन व्यापक, वैविध्यपूर्ण और जटिल होता है, जबकि कहानी में वह सीमित, एकल और सरल होता है। इसे इस रूप में भी कहा जा सकता है कि उपन्यास के कथ्य की कोई सीमा नहीं होती ; यह उपन्यासकार पर निर्भर है कि वह जीवन का कितना व्यापक फलक लेता है और उसका अनुभव-संसार कितना विस्तृत और वैविध्यपूर्ण है। कहानीकार को इतनी छूट नहीं होती। वह किसी एकल अनुभव को ही अपेक्षित तीव्रता के साथ कहानी में प्रस्तुत कर सकता है। जहाँ तक जटिलता का प्रश्न है, उपन्यास में तो उसकी पूरी गुंजाइश होती है, पर कहानी में उसके लिए अधिक अवकाश नहीं होता। कहानीकार का अनुभव भी जटिल हो सकता है, पर उसे प्रस्तुत करने के लिए उसमें पर्याप्त अवकाश या ‘स्पेस’ नहीं होता। जटिल अनुभव को व्यक्त करने के लिए कहानीकार को ‘लम्बी कहानी’ के शिल्प की शरण लेनी पड़ती है, जिसका आकार, मेरे सुझाव के अनुसार, 4000-15000 शब्दों का (अपेक्षित नमनीयता के अनुसार) होना चाहिए। कहानी और उपन्यास का एक अन्तर यह भी है कि उपन्यास में

एक 'विजन' होता है, जबकि कहानी किसी एक संवेदना से जुड़ी होती है। 'विजन' की पहचान लेखक की उस समग्र दृष्टि के रूप में की जा सकती है, जिसमें उसके अनुभव, संवेदना, विचार और जिन्दगी को समझने की असाधारण क्षमता का योग होता है। कहानी में विचार और चिन्तन के लिए कोई अवकाश नहीं होता। कहानी लेखक की किसी एकल संवेदना से सम्बद्ध होती है। एक उपमा का सहारा लें तो कह सकते हैं कि 'उपन्यास' में संवेदनाओं का जाल निर्मल आकाश में दिखाई पड़ने वाली निहारिका या तारों के समूह की तरह होता है जबकि 'कहानी' में व्यक्त संवेदना सुबह के चमकीले शुक्रग्रह के रूप में होती है।

अंग्रेजी आलोचकों द्वारा 'शॉर्ट स्टोरी' की पहचान ऐसी संक्षिप्त गद्यकथा के रूप में की गयी है, जो 'नॉवेल', 'एपिक' और 'रोमांस' जैसे बृहदाकार, व्यापक फलक वाले कथा-रूपों से भिन्न होती है। उनसे अलग, 'शॉर्ट स्टोरी' का उद्देश्य किसी एकल प्रभाव की सृष्टि करना होता है, जो किसी एक सार्थक प्रसंग या दृश्य से, जिसमें कुछ थोड़े से—कभी कभी तो मात्र एक ही—पात्र कार्यरत होते हैं, बिजली की चमक की तरह उद्भासित हो उठता है। इस कथा-रूप में मितप्रसारी दृश्य-रचना और संक्षिप्त वर्णन की अपेक्षा की जाती है ; चरित्र कार्यव्यापार और नाटकीय मुठभेड़ से युक्त तो होते हैं, पर उनका पूर्ण विकास दिखाना अपेक्षित नहीं होता। 'छोटी कहानी', अपने छोटे आकार के कारण, बड़े आकार वाली कथाओं की तरह दृश्य-योजना, परिवेश और मुख्य पात्रों के परिचय में, जिसे अँगरेजी के आलोचक 'एक्सपोजीशन' कहते हैं, बहुत उदार नहीं हो सकती। प्रायः छोटी कहानी कार्य-व्यापार के बीच की किसी क्रिया से, आकस्मिक आरम्भ के साथ शुरू होती है। बड़ी कहानियों की तरह छोटी कहानियों के कथानक में भी 'चरमोत्कर्ष' (क्लाइमेक्स), संकट का क्षण या मोड़ होते हैं, पर वे प्रायः एकल होते हैं ; उनका अन्त भी प्रायः आकस्मिक और खुला होता है। हिन्दी में प्रेमचन्द ने कहानी के स्वरूप-निर्धारण का प्रयास किया था, जो उनके कहानी-लेखन के अनुभव पर आधारित था। उनके अनुसार "वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम, अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है ; बल्कि अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावना से अनुरजित होकर कहानी बन जाती हैं।...सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो। वे मानते हैं कि "उपन्यासों की भाँति कहानियाँ भी कुछ घटना-प्रधान होती हैं, कुछ चरित्र-प्रधान। चरित्र-प्रधान कहानी का पद ऊँचा समझा जाता है ; मगर कहानी में बहुत विस्तृत विश्लेषण की गुंजाइश नहीं होती। यहाँ हमारा उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्य को चित्रित करना नहीं, वरन् उसके चरित्र का एक अंग भर दिखाना है।" वे इसमें यह भी जोड़ते हैं कि "कहानी जीवन के बहुत निकट आ गयी है। उसकी ज़मीन अब उतनी लम्बी-चौड़ी नहीं है। उसमें कई रसों, कई चरित्रों और घटनाओं के लिए स्थान नहीं रहा। अब वह केवल एक प्रसंग का, आत्मा की एक झलक का सजीव, मर्मस्पर्शी चित्रण है। इस एकतथ्यता ने उसमें प्रभाव, आकस्मिकता और तीव्रता भर दी है। अब उसमें व्याख्या का अंश कम, संवेदना का अंश अधिक रहता है। उसकी शैली भी अब प्रवाहमयी हो गयी है। लेखक को जो कुछ कहना है, वह कम-से-कम शब्दों में कह डालना चाहता है। वह अपने चरित्रों के मनोभावों की व्याख्या करने नहीं बैठता, केवल उसकी ओर इशारा भर कर देता है।" वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "गल्प का आधार अब घटना नहीं, मनोविज्ञान की अनुभूति है। आज लेखक केवल कोई रोचक दृश्य देखकर कहानी लिखने नहीं बैठ जाता। उसका उद्देश्य स्थूल सौन्दर्य नहीं। वह तो कोई ऐसी प्रेरणा चाहता है, जिसमें सौन्दर्य की झलक हो और इसके द्वारा वह पाठक की सुन्दर भावनाओं को स्पर्श कर सके।"

संरचना की दृष्टि से 'कहानी' और 'उपन्यास' में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। अन्तर मुख्यतः आकार को लेकर है। उपन्यास—शिल्प की सारी प्रविधियाँ, जैसे, दृश्य—परिदृश्य की योजना, कथक का कहानी के मुख्य पात्र 'मैं' में परिवर्तन, संवाद—योजना और नाटकीय आकस्मिकता, कथाओं का वर्तमान से अतीत और अतीत से वर्तमान में संचरण, कथा के भीतर कथाओं की योजना, मिथक और फन्तासी का उपयोग आदि दोनों की स्वीकृत प्रस्तुति—प्रविधियाँ हैं। अन्तर केवल यह होता है कि 'कहानी' में इन प्रविधियों का सीमित मात्रा में प्रयोग होता है और 'कथा' के स्थान पर 'प्रसंग' निर्मित होते हैं।

भाषा की दृष्टि से भी कहानी और उपन्यास में कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं होता। साधारणतः दोनों का गद्य सामान्य जीवन में प्रयुक्त होने वाले गद्य की तरह ही यथार्थ के निकट होता है। अभिव्यंजना की दृष्टि से दोनों में सर्जनात्मकता तो अपेक्षित होती ही है। कहानी में भाषिक सजावट के लिए कोई भी गुंजाइश नहीं होती। उसकी भाषा सटीक, संक्षिप्त, अर्थगर्भ और सूक्ति के रूप में होती है। उपन्यास की तरह उसमें विस्तार के लिए अवकाश नहीं होता।

3.4 कहानी और नाटक

'कहानी' की तुलना में 'नाटक' बहुत प्राचीन विधा है, इस कारण उसमें भेद—प्रभेद की संख्या अधिक है। नाटक संस्कृत 'दृश्यकाव्य' का एक भेद है, जिसका आकार अपेक्षाकृत बड़ा होता है। 'कहानी' का आकार 'नाटक' की अपेक्षा उसके एक भेद 'एकांकी नाटक' के अधिक निकट होता है। 'नाटक' में गद्य—पद्य दोनों का प्रयोग होता है, जबकि एकांकी नाटक में सामान्यतः गद्य का ही प्रयोग होता है। इस दृष्टि से 'कहानी' और 'एकांकी नाटक' दोनों में समानता है।

कथ्य की दृष्टि से भी आधुनिक एकांकी नाटक और कहानी में कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं है। दोनों का कथ्य मुख्यतः आधुनिक जीवन—यथार्थ से सम्बद्ध होता है। इनका मुख्य अन्तर संरचना को लेकर है। एकांकी नाटक संवादों में रचित होता है और उसमें बीच—बीच में रंग—निर्देश दिये जाते हैं। 'कहानी' में भी संवादों का उपयोग किया जाता है और कभी कभी पूरी कहानी भी केवल संवादों में रचित होती है। पर कहानी में रंग—निर्देश के स्थान पर कथक या 'नरेटर' स्थानों या परिवेश और पात्रों की वेशभूषा/रूपाकार आदि का वर्णन करता है। प्रेमचन्द की एक कहानी 'दुराशा' केवल संवादों के रूप में लिखी गयी है और स्वयं प्रेमचन्द ने उसे 'कहानी' मानकर अपने एक कहानी—संग्रह में संकलित भी किया था, पर उसे कहानी इस कारण नहीं माना जा सकता, क्योंकि उसमें नाटक की तरह आरम्भ में पात्रों का परिचय, प्रसंग का समय और स्थान का उल्लेख किया गया है। बीच में भी रंग—निर्देश किया गया है। नाटक में रंगमंच—निर्देश के बाद, जिसे दर्शक पढ़ता नहीं, बल्कि देखता है, पात्रों का प्रवेश आकस्मिक रूप से कराया जाता है। कहानी में भी पात्र कथक या कहानीकार द्वारा संक्षेप में उल्लिखित परिवेश में अपने संवादों के साथ नाटकीय रूप में प्रवेश करते हैं, जैसे प्रेमचन्द की प्रसिद्ध कहानी 'कफन' में। कतिपय कहानियों में उनके पात्र बिना परिवेश और समय के उल्लेख के ही, नाटकीय या आकस्मिक रूप में प्रवेश करते हैं, जैसे जयशंकर प्रसाद की प्रसिद्ध कहानी 'आकाशदीप' में। पात्रों का परिचय बाद में किसी ब्याज से दिया जाता है पर यह अन्तर शिल्प—प्रविधि का ही है।

3.5 कहानी और रेखाचित्र

‘छोटी कहानी’ के विकास में ‘स्केच’ और ‘टेल’ (उपाख्यान) की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है। ए.जे.एच. के अनुसार ये दो पद उस क्षेत्र के दो छोर हैं, जिनके भीतर आधुनिक छोटी कहानी (short story) विकसित हुई। अपनी अन्य विशेषताओं के साथ ‘स्केच’ तथ्यात्मक और पत्रकारिता के गुणों से युक्त और ‘टेल’ (उपाख्यान) की तुलना में सामान्यतः अधिक विश्लेषणात्मक और कम कथात्मक या नाटकीय होता है। स्केच का प्राथमिक रूप लिखित है ; छोटी कथा (उपाख्यान) का मौखिक। यह अकेला अन्तर ही उनके अलग अलग तरह के प्रभाव का कारण बन जाता है। स्केच—लेखक वर्तमान और प्रत्यक्ष यथार्थ पर अपनी नजर रखता है, जबकि उपाख्यान दरबार या अलाव के चारों ओर बैठे श्रोताओं को सुनायी जाने वाली चीज होती थी, जो प्रायः अतीत की पुनर्रचना होती थी। उन्नीसवीं शताब्दी में कुछ लेखकों ने—जिन्हें आधुनिक कहानी का ‘जनक’ कहा जा सकता है : निकोलाइ गोगोल, हॉथोर्न, ई.टी.ए. हॉफमान, हाइनरिख फॉन क्लाइस्ट, प्रोस्पेर मेरिमी, पो आदि—स्केच के तत्त्वों के साथ उपाख्यान के तत्त्वों का मिश्रण करके एक नयी कथा—विधा को अस्तित्व में ला दिया, जो ‘छोटी कहानी’ के नाम से जानी गयी। यद्यपि इनमें से प्रत्येक लेखक ने यह मिश्रण अपने ढंग से किया पर सामान्य लक्ष्य कदाचित् उपाख्यान की फन्तासी और कल्पनात्मक उड़ान को थोड़ा मन्द और स्केच को उसकी कठोर तथ्यात्मकता के बन्धन से मुक्त करना था। इस प्रकार आधुनिक छोटी कहानी अतिकल्पनात्मक कथा (उपाख्यान) और फोटोग्राफीय स्केच के मध्य विचरण करती है और किसी न किसी रूप में दोनों के गुणों से युक्त होती है। उदाहरण के लिए अर्नेस्ट हेमिंग्वे की छोटी कहानियाँ प्रायः परम्परागत मिथकीय प्रतीकों (पानी, मछली आदि) का उपयोग करके शक्ति अर्जित करती हैं, पर वे उपकथा की अपेक्षा स्केच के अधिक निकट हैं। इसके विपरीत उसी के समकालीन विलियम फॉकनर की कहानियाँ उपाख्यान के अधिक निकट प्रतीत होती हैं। हिन्दी में पहाड़ी, यशपाल आदि अनेक कहानीकारों ने कहानी में रेखाचित्र या स्केच का मिश्रण किया है। पर रामवृक्ष बेनीपुरी के ‘माटी की मूरतें’ और महादेवी वर्मा के ‘अतीत के चलचित्र’ के रेखाचित्रों को ‘कहानी’ नहीं कहा जा सकता। कारण यह कि इन रेखाचित्रों के पात्र उनके लेखकों से जुड़े वास्तविक व्यक्ति हैं जबकि पहाड़ी, यशपाल और यहाँ तक कि प्रेमचन्द की रेखाचित्रनुमा कहानियों के पात्र काल्पनिक हैं।

3.6 कहानी और अन्य गौण गद्य विधाएँ

‘कहानी’ से समानता रखने वाली गौण गद्य विधाओं में ‘आत्मकथा’, ‘संस्मरण’, निबन्ध’, ‘फीचर’, ‘रिपोर्टाज’ आदि के नाम लिये जा सकते हैं। वस्तुतः ‘कहानी’ शिल्प के रूप में इनका प्रयोग करने के कारण इनके निकट आ जाती है।

3.6.1 कहानी और आत्मकथा

आत्मकथा में लेखक ‘मैं’ शैली में अपनी जीवनी लिखता है। यह सच है कि ‘कहानी’ भी लेखक के निजी अनुभव का ही आख्यान होती है, और अनेक कहानियाँ ‘मैं’ शैली में लिखी जाती हैं, इस कारण कभी—कभी ‘कहानी’ में ‘आत्मकथा’ का भ्रम पैदा होता है। कभी—कभी लेखक स्वयं भी यह भ्रम पैदा करने की कोशिश करते हैं ताकि कहानी में विश्वसनीयता का गुण आ सके। प्रेमचन्द की कुछ कहानियाँ, जैसे ‘आपबीती’, ‘कजाकी’, ‘कश्मीरी सेव’, ‘गुल्ली डंडा’, ‘चोरी’, ‘पंडित मोटेराम की डायरी’, ‘पैपुजी’ आदि, उनकी

आपबीती होने का भ्रम पैदा करती हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानी 'काबुलीवाला' भी उनकी आत्मकथा का भ्रम पैदा करती है।

3.6.2 कहानी और संस्मरण

कहानी और संस्मरण दोनों गद्य में लिखे जाते हैं और आकार की दृष्टि से भी तो समान ही होते हैं, पर उनकी प्रकृति में अन्तर होता है। संस्मरण लेखक के जीवन में आए किसी वास्तविक व्यक्ति, पशु-पक्षी या प्रसंग से जुड़ा होता है, जबकि कहानी लेखक के अनुभव से जुड़ी होने पर भी कल्पनाप्रसूत होती है। 'कहानी' में 'संस्मरण' की प्रविधि का प्रयोग करके उसे विश्वसनीय बनाने का प्रयास भी किया जाता है।

3.6.3 कहानी और ललित निबन्ध

आकार और गद्य विधा होने की समानता के बावजूद 'कहानी' और 'ललित निबन्ध' में कोई उल्लेखनीय समान तत्त्व नहीं होता। कभीकभार दोनों में परस्पर आवाजाही हो जाती है, जैसे जब 'कहानी' में कोई पात्र आत्मचिन्तनरत होता है तो वहाँ ललित निबन्ध की स्वच्छन्दता आ जाती है और ललित निबन्ध में भी कथा-प्रसंगों का समावेश कथ्य की जरूरत के अनुसार होता रहता है।

3.6.4 कहानी और फीचर

'फीचर' भी कहानी के आकार की एक गद्य विधा है, पर उसमें सबकुछ आँखों-देखा और कानों-सुना ही होता है; कल्पना के लिए उसमें कोई स्थान नहीं होता। 'फीचर' प्रायः व्यक्ति या स्थितिविशेष के यथातथ्य वर्णन से सम्बद्ध होता है जबकि 'कहानी' में लेखक की अनुभवजन्य संवेदना काल्पनिक प्रसंगों के माध्यम से व्यक्त होती है।

3.6.5 कहानी और रिपोर्टाज

'फीचर' की तरह ही 'रिपोर्टाज' का सम्बन्ध वास्तविक घटनाओं और सामूहिक प्रसंगों से होता है और दोनों का एक दूसरे के क्षेत्र में प्रवेश वर्जित नहीं होता। पर इसके अतिरिक्त और कोई समानता उनमें लक्षित नहीं होती।

3.7 सारांश

साहित्य के सम्यक् और सुचारु रूप से अध्ययन के लिए काव्यशास्त्र या आलोचना-शास्त्र द्वारा उसका वर्गीकरण परम्परा से होता आया है। कुछ आधुनिक आलोचक और रचनाकार इस विभाजन को अनावश्यक मानने लगे हैं। उनके अनुसार साहित्य को उसकी समग्रता में ही समझने का प्रयास करना चाहिए, न कि उसे अलग-अलग खंडों में बाँटकर। पर 'उपन्यास', 'कहानी', 'नाटक', 'रेखाचित्र', 'संस्मरण', 'ललित निबन्ध' आदि गद्य विधाओं में अन्तर है। यह अवश्य है कि कुछ प्रतिभाशाली लेखक विधाओं के इस भेद को स्वीकार नहीं करते और इनका रचनात्मक स्तर पर कुशल सम्मिश्रण करते हैं, पर इस सम्मिश्रण का भी अनुशंसन करने के लिए विधाओं की अलग-अलग पहचान जरूरी है।

मोटे तौर पर उपन्यास उस अपेक्षाकृत बड़े आकार की रचना को कहा जाता है, जो गद्य में रचित होती है, जिसमें एक कल्पनाप्रसूत पर यथार्थ संसार होता है, और जो नवीन होती

है। इसमें सन्देह नहीं कि 'उपन्यास' जैसी सतत विकासमान विधा को इस स्थूल परिभाषा में समेटा नहीं जा सकता। 'पहचान' की दृष्टि से भी इसकी सीमाएँ स्पष्ट हैं। इसके आकार की कोई सर्वमान्य सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। इसका अधिकतम आकार तो कुछ भी हो सकता है। निम्नतम आकार—सीमा के बारे में भी कोई सुनिश्चित शब्द—संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती। उपन्यास की कथा कल्पनाप्रसूत हो, इसे लेकर तो कोई विवाद नहीं है, पर वह 'यथार्थ' हो ही, इस धारणा से सभी रचनाकार और आलोचक एकमत नहीं हैं। 'यथार्थ' की अवधारणा को लेकर रचनाकारों और आलोचकों में बहुत मतभेद है। इन सारे मतभेदों के बावजूद 'उपन्यास' की पहचान के लिए उसका 'अपेक्षाकृत' बड़े आकार का होना, गद्य में लिखा जाना, कल्पनाप्रसूत होना, यथार्थ के प्रति—भले ही वह 'जादुई' ही क्यों न हो—निष्ठावान और 'नया' होना आवश्यक है।

कहानी का भी कथा—संसार कल्पनाप्रसूत और यथार्थ होता है ; पर 'उपन्यास' की अपेक्षा 'कहानी' का आकार बहुत छोटा, उसका कथा—संसार भी जीवन का एक अंश या टुकड़ा मात्र होता है।

नाटक गद्य और पद्य दोनों में, अलग—अलग और मिश्रित रूप में भी, रचित होता है। इसकी मुख्य पहचान यह है कि यह संवादों में रचित होता है। रंग—निर्देश इसकी अपनी खास पहचान है। पर कहानी केवल गद्य में लिखी जाती है। संवाद—योजना कहानी में होती है, पर रंग—निर्देश नहीं होता।

'स्केच' मूलतः चित्रकला का एक अंग है। इसमें चित्रकार कुछ इनीगिनी रेखाओं द्वारा किसी वस्तु, व्यक्ति या दृश्य को अंकित करता है। 'रेखाचित्र' में कम से कम शब्दों में किसी वस्तु, व्यक्ति या दृश्य का अंकन किया जाता है। 'रेखाचित्र' का विषय वास्तविक अनुभव से जुड़ा होता है। वहाँ कल्पना की अधिक गुंजाइश नहीं होती। 'कहानी' में संवेदना का तत्त्व प्रमुख होता है और उसमें निर्मित प्रसंग कल्पनाप्रसूत होते हैं।

'आत्मकथा' से 'कहानी' की भिन्नता इस बात में है कि आत्मकथा में लेखक अपने जीवन के तथ्यों को ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करता है। उसमें कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं होता, जबकि 'कहानी' कल्पनाप्रसूत होती है।

'संस्मरण' आत्मकथा का एक अंग है। संस्मरण—लेखक अपने निजी अनुभवों को ही लिखित रूप देता है और कल्पना के लिए इसमें कोई गुंजाइश नहीं होती। कहानी में ऐसा नहीं होता।

चेतना की उन्मुक्त उड़ान की ललित शैली में अभिव्यक्ति को 'ललित निबन्ध' कहा जाता है। इसमें विषय का कोई बन्धन नहीं होता और न ही उसकी कोई सीमा निर्धारित होती है। 'कहानी' से इसका सम्बन्ध दूर का ही है।

'फीचर' रेडियो द्वारा विशेष अवसरों पर प्रसारण के लिए तैयार किया जाने वाला डाक्यूमेन्ट्री कार्यक्रम है। इसका रूप 'रूपक' का होता है। 'कहानी' से इसका सीधा कोई सम्बन्ध नहीं है।

रिपोर्ट के साहित्यिक और कलात्मक रूप को ही 'रिपोर्टाज' कहा जाता है। वस्तुगत तथ्य की ललित शैली में प्रभावोत्पादक प्रस्तुति रिपोर्टाज की पहचान है। इसमें कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं होता। आँखों—देखी और कानों सुनी घटनाओं पर ही रिपोर्टाज लिखे जाते हैं।

जिन गद्य विधाओं में सर्वाधिक समानता है, वे हैं 'उपन्यास' और 'कहानी'। कथ्य की दृष्टि से इनमें कोई मौलिक अन्तर नहीं होता। इनकी पहचान का सबसे स्थूल आधार तो इनका आकार ही है। मोटे तौर पर कहा जाता है कि 'उपन्यास' का आकार अपेक्षाकृत 'बड़ा' और 'कहानी' का आकार 'छोटा' होता है। 'उपन्यास' की निम्नतम शब्द-सीमा 50000 के आसपास निधारित की जाती है। 'कहानी' की शब्द-संख्या 1000-3000, और 'लम्बी कहानी' की शब्द-संख्या 4000-15,000 प्रस्तावित की जा सकती है। 'लघु कथा', 'कहानी', 'लम्बी कहानी', 'उपन्यासिका', 'लघु उपन्यास' और उपन्यास के बीच की दूरी इतनी लचीली रखी जा सकती है कि वे एक दूसरे की सीमाओं में आवाजाही कर सकें। 'कहानी' और 'उपन्यास' के अन्तर का एक विश्वसीय आधार यह है कि उपन्यास में कथा विकासमान होती है, जबकि 'कहानी' में वह किसी एकल प्रसंग तक सीमित होती है। 'कथा' की दृष्टि से 'उपन्यास' और 'कहानी' का अन्तर यह स्वीकार किया जा सकता है कि उपन्यास में शुद्ध 'कथा' तो नहीं, पर मानवीय कार्यव्यापार को प्रस्तुत करने वाली कथा का दिक् और काल की दृष्टि से विकास और विस्तार अपेक्षित होता है जबकि 'कहानी' में 'कथा' के लिए तो कोई गुंजाइश होती ही नहीं और मानवीय कार्यव्यापार भी सीमित काल(जैसे कुछ मिनटों से लेकर 24 घंटों के भीतर) और दिक् (किसी एक स्थान या अधिक से अधिक दो-तीन जगहों तक) में कीलित हों, उससे बाहर न निकलें।

कथ्य की दृष्टि से कहानी-उपन्यास में कोई मौलिक अन्तर नहीं होता है। दोनों जीवन-यथार्थ का चित्रण करते हैं। अन्तर यह है कि उपन्यास में प्रस्तुत जीवन व्यापक, वैविध्यपूर्ण और जटिल होता है, जबकि कहानी में वह सीमित, एकल और सरल होता है।

कहानी और उपन्यास का एक अन्तर यह भी है कि उपन्यास में एक 'विजन' होता है, जबकि कहानी किसी एक संवेदना से जुड़ी होती है।

'कहानी' का आकार 'नाटक' की अपेक्षा उसके एक भेद 'एकांकी' के अधिक निकट होता है। 'एकांकी' संवादों में रचित होता है और उसमें बीच-बीच में रंग-निर्देश दिये जाते हैं। 'कहानी' में भी संवादों का उपयोग किया जाता है और कभी-कभी पूरी कहानी भी केवल संवादों में रचित होती है। पर कहानी में रंग-निर्देश के स्थान पर कथक या 'नरेटर' स्थान/परिवेश और पात्रों की वेशभूषा/रूपाकार आदि का वर्णन करता है।

'कहानी' और 'रेखाचित्र'(स्केच) आकार की दृष्टि से समान होते हैं। इनका मुख्य अन्तर यह है कि 'रेखाचित्र' तथ्यों पर आधारित होते हैं, जबकि 'कहानी' कल्पनाप्रसूत होती है। 'आत्मकथा' में लेखक 'मैं' शैली में अपनी जीवनी लिखता है। यह सच है कि 'कहानी' भी लेखक के निजी अनुभव का ही आख्यान होती है, और अनेक कहानियाँ 'मैं' शैली में लिखी जाती हैं, पर वह यथार्थ होने पर भी कल्पनाप्रसूत ही होती है। 'संस्मरण' लेखक के जीवन में आए किसी वास्तविक व्यक्ति, पशुपक्षी या प्रसंग से जुड़ा होता है, जबकि कहानी लेखक के अनुभव से जुड़ी होने पर भी कल्पनाप्रसूत होती है। आकार और गद्य विधा होने की समानता के बावजूद 'कहानी' और 'ललित निबन्ध' में कोई उल्लेखनीय समान तत्त्व नहीं होता। कभी कभार दोनों में परस्पर आवाजाही हो जाती है। 'फीचर' भी कहानी के आकार की एक गद्य विधा है, पर उसका रूप रूपक का होता है और कल्पना के लिए उसमें कोई स्थान नहीं होता। 'फीचर' की तरह ही 'रिपोर्टाज' का सम्बन्ध वास्तविक घटनाओं और सामूहिक प्रसंगों से होता है और 'कहानी' से उसका सम्बन्ध दूर का ही होता है।

1. गद्य विधाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. 'उपन्यास' और 'कहानी' के अन्तर पर प्रकाश डालिए।
3. 'कहानी' और 'रेखाचित्र (स्केच)' के परस्पर सम्बन्ध और उनके अन्तर का विवेचन कीजिए।
4. 'कहानी' और आत्मकथा—संस्मरण—ललित निबन्ध—फीचर—रिपोर्टाज आदि के सम्बन्ध और अन्तर पर प्रकाश डालिए।



इकाई 4 हिन्दी कहानी का उद्भव

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 पृष्ठभूमि : मध्यकाल में गद्यकथा का विकास

4.3 हिन्दी कहानी के उद्भव के कारण या परिस्थितियाँ

4.4 हिन्दी कहानी के उद्भव में गद्य के विकास की भूमिका

4.5 हिन्दी गद्य कथा और उसके विकास में पाठक वर्ग की भूमिका

4.5.1 हिन्दी गद्य के विकास में मुद्रणयन्त्र की भूमिका

4.5.2 पाठक वर्ग के विकास में शिक्षा की भूमिका

4.5.3 अदालती भाषा के रूप में हिन्दी

4.5.4 हिन्दी समाचारपत्र और पाठक

4.5.5 उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दी कथा—पुस्तकों का प्रकाशन

4.6 कहानी के विकास में पत्र—पत्रिकाओं की भूमिका

4.6.1 हिन्दी कहानी और 'सरस्वती'

4.6.2 हिन्दी में 'छोटी कहानी' का उद्भव और प्रारम्भिक रूप

4.7 सारांश

अभ्यास

4.0 उद्देश्य

एम. ए. हिन्दी के द्वितीय वर्ष के कहानी से सम्बन्धित माड्यूल के पाठ्यक्रम 'कहानी : स्वरूप और विकास' से सम्बन्धित प्रथम खंड 'कहानी के सिद्धान्त और स्वरूप-1' की यह चौथी इकाई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- मध्यकाल में हिन्दी गद्य कथा के विकास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।
- हिन्दी कहानी के उद्भव के कारणों या परिस्थितियों से अवगत हो सकेंगे।
- 'कहानी' के उद्भव में गद्य के विकास की भूमिका से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।
- 'कहानी' के विकास में पाठक वर्ग की भूमिका से अवगत हो सकेंगे/सकेंगी।
- हिन्दी गद्य के विकास में मुद्रणयन्त्र की भूमिका से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।
- पाठक वर्ग के विकास में शिक्षा की भूमिका की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।
- अदालती भाषा के रूप में हिन्दी के प्रयोग से उसके विकास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।

- हिन्दी समाचार-पत्र और पाठक वर्ग के सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई से हम इस पाठ्यक्रम की शुरुआत करने जा रहे हैं। सबसे पहले हम मध्यकाल में गद्यकथा की स्थिति पर विचार करेंगे। उसके बाद हिन्दी कहानी के उद्भव के कारणों या परिस्थितियों पर विचार किया जाएगा। लिखित कथा के विकास के लिए हिन्दी गद्य का विकास जरूरी घटक था, जो औपनिवेशिक शासन और ईसाई धर्मप्रचारकों द्वारा हिन्दुस्तानी गद्य के विकास की आवश्यकता, मुद्रण तकनीक के आगमन आदि के फलस्वरूप सम्भव हुआ। इसी प्रकार कथा साहित्य के विकास के लिए एक पाठक-समूह की जरूरत थी, जो शिक्षा के विकास, सरकारी कार्यालयों और अदालतों में हिन्दी के प्रवेश, हिन्दी समाचार-पत्रों के विकास, साहित्यिक पत्रिकाओं के प्रकाशन आदि के कारण अस्तित्व में आया। इन सारी परिस्थितियों के फलस्वरूप हिन्दी में पहले 'उपन्यास' का उद्भव हुआ। तत्पश्चात् 'कहानी' अस्तित्व में आयी। हिन्दी की प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' में 'आख्यायिका' नाम से कहानियाँ प्रकाशित होनी शुरू हुईं। इस इकाई में हिन्दी में 'कहानी' के उद्भव और विकास के आरम्भिक दौर का परिचय दिया गया है।

4.2 पृष्ठभूमि : मध्यकाल में गद्यकथा का विकास

इस खंड की पहली इकाई में आपने देखा है कि बाणभट्ट की 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' ने संस्कृत गद्य कथा को एक नया रूप दिया था। उसके बाद दंडी ने अपनी रचना 'दशकुमार चरित' द्वारा इस परम्परा को समृद्ध किया। पर बाणभट्ट और कादम्बरी के बाद कथा-रचना की यह परम्परा आगे नहीं बढ़ पायी। दसवीं सदी में धनपाल ने तिलकमंजरी के रूप में कादम्बरी की परम्परा को जीवित करने का प्रयत्न तो किया पर संरचना की दृष्टि से उसे भी कादम्बरी का विकास नहीं कहा जा सकता। इसका सबसे बड़ा कारण कदाचित् यह था कि इस समय तक आते-आते संस्कृत केवल राजदरबारों और पंडितों की भाषा रह गयी थी और चूँकि दसवीं शताब्दी के बाद धीरे-धीरे संस्कृत को राजाश्रय प्रदान करनेवाले हिन्दू राज्य समाप्त हो गये, इस कारण संस्कृत काव्य की परम्परा बहुत कमजोर हो गयी। संस्कृत के बाद फारसी केन्द्रीय सत्ता में आ गयी और काव्यरचना का माध्यम भी बनी। पर देश की आम जनता का लगाव न तो संस्कृत से था न फारसी से। इन्हीं परिस्थितियों में उत्तरी भारत की जन-बोलियाँ साहित्य की भाषा बनीं। उन्हें सूफियों और सन्तों-भक्तों का आश्रय मिला और काव्य-रचना का अभूतपूर्व विकास हुआ। इस विकास के मूल में उत्तर भारत की जनता का 'लोकाश्रय' था। पर गद्य के विकास के लिए जिस राजाश्रय की अपेक्षा होती है, उससे ये जन-भाषाएँ लगभग साढ़े सात सौ वर्षों तक वंचित रहीं। अठारहवीं शताब्दी में ब्रज भाषा और खड़ी बोली में 'योगवाशिष्ठ', 'वैतालपंचविंशति' और 'सिंहासनद्वात्रिंशतिका' आदि संस्कृत गद्य कथा पुस्तकों के रूपान्तर हुए और उनका लोक में प्रचार भी बहुत हुआ, पर कोई मौलिक गद्य कथा पुस्तक ब्रजभाषा या हिन्दी की किसी दूसरी घटक भाषा में नहीं लिखी गयी। कुछ कथा पुस्तकें, जैसे, 'दस अवतार भाषा' (1744), 'पद्मपुराण का भाषानुवाद' (1761), किस्सा चहार दरवेश का अनुवाद 'नौतर्ज मुरस्सा' (1798) आदि इस काल में लोकप्रिय हुई थीं। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व खड़ीबोली हिन्दी/हिन्दवी में केवल दो मौलिक गद्य कथा पुस्तकें, मुल्ला वजही कृत सबरस (1636) और सैयद इंशा अल्ला खाँ कृत 'रानी केतकी की कहानी' (ल.1800) उपलब्ध होती हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, ऐतिहासिक

कारणों से, खड़ी बोली के आधार पर विकसित हिन्दी गद्य का विकास हुआ और उसके साथ ही 'गद्य कथा' भी नये अन्दाज में प्रकट हुई। इसी ने 'उपन्यास' और बाद में 'कहानी' का भी रूप ग्रहण किया।

4.3 हिन्दी कहानी के उद्भव के कारण या परिस्थितियाँ

यह तो आप जानती/जानते ही हैं प्रत्येक परिघटना में कार्य-कारण सम्बन्ध होता है। बिना कारण के कोई भी कार्य प्रकट नहीं होता। बीसवीं सदी के प्रथम दशक में हिन्दी में 'कहानी' जैसी विधा का उद्भव और विकास भी अकारण बिजली की चमक की तरह नहीं हो गया। इसके लिए लगभग पचास वर्षों से बादल इकट्ठे हो रहे थे; परिस्थितियाँ निर्मित हो रही थीं, जो पहले उपन्यास और फिर 'कहानी' के उद्भव और विकास का कारण बनीं। इन परिस्थितियों में हिन्दी गद्य और उसके साथ-साथ पाठक-वर्ग का विकास प्रमुख था। हिन्दी गद्य और पाठक-वर्ग के निर्माण में मुद्रण-तकनीक के आगमन, शिक्षा के प्रसार, अदालती भाषा के रूप में हिन्दी की स्वीकृति, समकालीन आर्थिक स्थिति, हिन्दी समाचारपत्रों के आगमन, तिलस्मी-जासूसी कथापुस्तकों के प्रकाशन आदि की महत्वपूर्ण भूमिका थी। हिन्दी में साहित्यिक पत्रिकाओं के आरम्भ, बँगला में 'छोटो गल्प' के उदय, 'सरस्वती' आदि पत्रिकाओं के प्रकाशन से भी हिन्दी 'कहानी' के उद्भव और विकास को गति मिली। आगे हम इन कारणों अथवा परिस्थितियों का विवेचन करेंगे।

4.4 कथा-साहित्य के उद्भव में गद्य के विकास की भूमिका

हिन्दी कथा-साहित्य के उद्भव में गद्य के विकास की महत्वपूर्ण भूमिका है। मध्यकाल में हिन्दी गद्य का विकास अवरुद्ध प्रायः रहा। इसका एक कारण, जैसा हम कह चुके हैं, हिन्दी का राज्याश्रय से वंचित रहना है। दूसरा कारण मध्यकाल में मुद्रणयन्त्र का प्रचलन में न आना भी है। यह बात ध्यान में रखने की है कि 'कहानी', जिसे अंग्रेजी में 'शॉर्ट स्टोरी' कहते हैं, साहित्य की प्रमुख विधाओं में सबसे आधुनिक है। इसके पहले उपन्यास (नॉवेल) का उदय हो चुका था। यह भी स्मरण रखने की बात है कि 'उपन्यास' और 'कहानी' एक ही प्रजाति की विधाएँ हैं और इनके उद्भव और विकास की परिस्थितियाँ समान हैं। उपन्यास के उदय और विकास के लिए जो परिस्थितियाँ अपेक्षित थीं वे उन्नीसवीं सदी के पहले अस्तित्व में नहीं आयी थीं।

पाठक उपन्यास/कहानी की बुनियादी ज़रूरत है। इनकी प्रमुख पहचान पाठ्य होना ही है। यद्यपि 'कहानी' विशेष अवसरों पर पढ़कर सुनायी भी जाती है, पर वह उसका स्वभाव नहीं है। इस अर्थ में वह परम्परागत कथा या कहानी से भिन्न है। उपन्यास/कहानी के उद्भव और विकास के लिए जरूरी बुनियादी संरचना के रूप में गद्य का विकास और मुद्रण-यन्त्र का आविष्कार आवश्यक था। यूरोप में तेरहवीं शताब्दी में मुद्रण यन्त्र का आविष्कार हुआ, जिससे गद्य के विकास में अभूतपूर्व तेजी आयी। सामन्तवाद के स्थान पर पूँजीवाद के उदय का भी समय लगभग यही है। पूँजीवाद के साथ मध्यवर्ग का भी विकास हुआ, जिसने अपनी विशालता और बौद्धिक जागरूकता के कारण विशाल पाठक वर्ग का भी रूप ले लिया। चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में यूरोप में मध्यवर्गीय पाठक-वर्ग पैदा हो गया था, जिसने वहाँ उपन्यास के उदय के लिए बुनियादी संरचना के निर्माण में योग दिया। फलस्वरूप सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व ही यूरोप में 'उपन्यास' अस्तित्व में आ गया।

4.5 हिन्दी गद्य कथा और उसके विकास में पाठक वर्ग की भूमिका

यह तो आप जान ही चुके/चुकी हैं कि आरम्भ में 'कथा' सुनाने-सुनने की चीज थी। जब 'कथा' गद्य में लिखी जाने लगी तो वह श्रव्य के साथ साथ पाठ्य होने लगी। मुद्रणयन्त्र के आगमन के बाद 'कथा' श्रव्य कम और पाठ्य अधिक होने लगी। मुद्रण तकनीक के विकास के चलते पुस्तकें सस्ती और आसानी से उपलब्ध होने लगीं तो 'कथा' अधिकतर पाठ्य ही हो चली। शिक्षा के प्रसार, हिन्दी के प्रचार-प्रसार के प्रति आयी जागरूकता, अदालतों में हिन्दी के प्रवेश, पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन आदि से पाठक-वर्ग का प्रसार होने लगा। भारत में इस प्रकार की परिस्थितियाँ औपनिवेशिक शासन के बाद निर्मित हुई। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर लगभग आगामी सात दशकों तक हिन्दी पाठकवर्ग के निर्माण की प्रक्रिया बहुत धीमी रही और उपन्यास एक विधा के रूप में लगातार दस्तक देता रहा। आलंकारिक भाषा में यह भी कहा जा सकता है कि वह लगभग सत्तर वर्ष तक परिस्थितियों के गर्भ में कुलबुलाता रहा और 1870 ई. में 'देवरानी जेठानी की कहानी' के रूप में प्रकट हुआ। इसके लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व बँगला और मराठी में उपन्यास का जन्म हो चुका था। बँगला और हिन्दी में उसे 'उपन्यास', उर्दू में 'नाविल', मराठी में 'कादम्बरी' तथा गुजराती में 'नवल कथा' की संज्ञा प्राप्त हुई। 'कहानी'—लेखन का आरम्भ पहले बँगला में 'छोटो गल्प' के नाम से हुआ। वस्तुतः यह नाम अँगरेजी की 'शॉर्ट स्टोरी' का ही रूपान्तर था। हिन्दी में 'कहानी' का आरम्भ 'आख्यायिका' नाम से हुआ, पर बाद में उसके लिए 'कहानी' पद ही स्वीकृत हुआ।

कथा के उपन्यास/कहानी में रूपान्तरण की कतिपय अनिवार्य शर्तों में इसका लिखित गद्य कथा होना जरूरी था। हिन्दी क्षेत्र में 'मौखिक गद्य कथा' का अस्तित्व तो सदियों से था, पर 'लिखित' रूप में उसका प्रचलन बहुत कम था। ब्रजभाषा, हिन्दी (हिन्दवी) और राजस्थानी में लिखित गद्यकथाओं की एक क्षीण सी परम्परा अवश्य विद्यमान थी पर उसका सम्बन्ध भी पाठक से उतना नहीं था जितना 'श्रोता' से। जैसा पहले कहा जा चुका है, श्रोता के पाठक बनने की प्रमुख शर्त व्यक्ति का पठन-योग्यता से सम्पन्न होना है। मुद्रित पुस्तकों की उपलब्धता भी पाठक समूह के निर्माण से अनिवार्यतः जुड़ी हुई है। ये सारी परिस्थितियाँ अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक भारत में, विशेषतः हिन्दी क्षेत्र में, नहीं थीं। यद्यपि अँगरेजों के शासन के पूर्व हिन्दी क्षेत्र में शिक्षा का अभाव न था पर इस शिक्षा में माध्यम या विषय के रूप में 'हिन्दी' का स्थान नगण्य था। सरकारी कामकाज की भाषा फारसी थी, अतः जीविका के लिए लोग फारसी भाषा और लिपि की शिक्षा को ही महत्त्व देते थे। धर्म भावना और उसकी जरूरतों के कारण देवनागरी जीवित तो थी, पर व्यावहारिक जीवन में उसका कोई महत्त्व न था। कथाएँ मनोरंजन या शिक्षा के लिए सुनी-सुनायी जाती थीं। सामान्य आदमी इतना सक्षम नहीं था कि हस्तलिखित कथापुस्तकें उसे सुलभ होतीं। बैताल पचीसी, सिंहासन बत्तीसी, सबरस आदि सत्रहवीं शताब्दी में लिखी जा चुकी थीं पर उन तक बहुत कम लोगों की पहुँच थी। वे राजाओं, नवाबों या बहुत से बहुत बड़े ज़मींदारों की हवेलियों तक ही पहुँच पाती थीं। सामान्य आदमी तो उन्हें 'सुनता' ही था ; भले ही सामूहिक रूप से कोई कथावाचक उन पोथियों को पढ़ कर सुनाता हो।

4.5.1 हिन्दी गद्य के विकास में मुद्रणयन्त्र की भूमिका

उपलब्ध सूचनाओं के अनुसार 1667 ई. में रोम से प्रकाशित अथानासी किर्चरी कृत 'चाइना.

.. 'इलस्ट्रेटा' नामक लैटिन किताब सर्वप्रथम देवनागरी लिपि में मुद्रित हुई थी। 1745–58 ई.के बीच शूल्त्स का बाइबिल का हिन्दी अनुवाद हाल (Halle) में छपा था। पर हिन्दी में पुस्तकों के मुद्रण का वास्तविक आरम्भ 19वीं शताब्दी के प्रथम दशक में हुआ। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में स्थापित फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता में अंग्रेजी पदाधिकारियों को हिन्दुस्तानी और हिन्दी की शिक्षा देने की योजना का आरम्भ हुआ। इसके लिए पुस्तकों की जरूरत थी। बाद में प्राथमिक स्कूलों के पाठ्यक्रम के लिए उपयोगी ज्ञान की पुस्तकें उपलब्ध कराने के लिए स्कूल बुक सोसाइटी की स्थापना हुई। फोर्ट विलियम कॉलेज में यद्यपि 'हिन्दी' की अपेक्षा 'हिन्दुस्तानी' या उर्दू को वरीयता मिली हुई थी, पर हिन्दुस्तानी की पुस्तकें देवनागरी में भी मुद्रित होती थीं। कॉलेज के पाठ्यक्रम की पुस्तकें मुद्रित करने के लिए गिलक्राइस्ट का हिन्दुस्तानी प्रेस तो था ही अन्य निजी नागरी मुद्रणालयों से भी सहायता ली जाती थी। इस प्रकार फोर्ट विलियम कॉलेज से नागरी मुद्रण को बहुत प्रोत्साहन मिला। स्कूल बुक सोसाइटियों के लिए छपने वाली पुस्तकों के मुद्रण से भी नागरी मुद्रण के प्रसार को बल मिला।

1810 ई. में अथवा उसके कुछ पूर्व लल्लूलालजी ने कलकत्ता में संस्कृत प्रेस की स्थापना की थी, जहाँ से 1810 ई. में प्रेमसागर, 1811ई. में 'ब्रजभाषा व्याकरण' और 1817 ई. में 'माधव विलास' नामक पुस्तकें छपी थीं। इन पुस्तकों के अतिरिक्त लल्लूलालजी ने तुलसी दास, बिहारी, नरोत्तम दास, ब्रजवासी दास आदि की पुस्तकें भी पहली बार छपी थीं। सन् 1818ई. में श्रीरामपुर के मिशनरियों का बैप्टिस्ट मिशन प्रेस कलकत्ता में स्थापित हुआ, जहाँ से स्कूल बुक सोसाइटी के लिए हिन्दी में पचासों पुस्तकें छपीं। 1825 ई. तक कलकत्ता में स्कूल बुक सोसाइटी का अपना प्रेस भी खुल चुका था। 1827 ई. में अथवा उसके कुछ पूर्व कलकत्ता में 'द एजुकेशन प्रेस' की स्थापना हुई थी।

सन् 1832 ई. के आस-पास, हिन्दी क्षेत्र में, बनारस टकसाल प्रेस और कानपुर लीथो प्रेस से रामचरित मानस के प्रकाशित होने का पता चलता है। सन् 1834. से 1856. के बीच कलकत्ता, लुधियाना, आगरा, मिर्जापुर, सिकन्दरा, बनारस, इलाहाबाद आदि शहरों में दशाधिक प्रेस स्थापित हुए थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हिन्दी मुद्रणालयों और उनमें प्रकाशित पुस्तकों पर सरसरी नजर डालने से स्पष्ट हो जाता है कि इस काल के मुद्रणालयों की स्थापना सामान्य हिन्दी पाठकों की माँग पर नहीं हुई थी। वस्तुतः इस काल में हिन्दी पाठक वर्ग अस्तित्व में आया ही नहीं था। ये प्रेस मुख्यतः ईसाई मिशनरियों के धर्मप्रचार के निमित्त खुले थे। ईसाई पादरी भारतीयों में अपने धर्मग्रन्थ बाइबिल का प्रचार करना चाहते थे, जिसके लिए उन्होंने भारत की प्रायः सभी भाषाओं में टाइप तैयार करने तथा प्रेस खोलने के प्रयत्न किए थे। 1850 ई. के पूर्व के अधिकांश हिन्दी मुद्रणालय ईसाई मिशनरियों द्वारा ही स्थापित किए गये थे।

इस काल में प्रेस खोलने वालों का ध्यान सामान्य हिन्दी पाठकों की तरफ बिलकुल ही न गया हो, ऐसी बात नहीं। लल्लूलालजी ने अपने मुद्रणालय से तुलसी, बिहारी, नरोत्तम दास, ब्रजवासी दास आदि के काव्यग्रन्थ छापे थे तथा 1832 ई. के लगभग बनारस और कानपुर से रामचरित मानस का मुद्रण हुआ था। 1846 ई. में कलकत्ता के काश्मीरी यन्त्रालय से कहानी 'रानी केतकी' की छपी थी। इससे काफी पहले किसी मुंशी हरीराम पंडित ने 'रानी केतकी' की कहानी देवनागरी लिपि में छपी थी। इन प्रकाशनों के फलस्वरूप हिन्दी के श्रोता-समुदाय के पाठक-समुदाय में रूपान्तरण की प्रक्रिया आरम्भ हुई। 1850 ई. के बाद ईसाई धर्म-प्रचारकों की प्रतिक्रिया में हिन्दुओं की तरफ से भी धर्म

प्रचार के आन्दोलन शुरू हुए जिसके फलस्वरूप नागरी मुद्रण को बहुत प्रोत्साहन मिला। स्कूली किताबें छापने के लिए भी नागरी मुद्रणालय खुलते रहे। पर सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि सामान्य पाठकों की रुचि की पुस्तकें छापने के लिए व्यावसायिक स्तर पर प्रेसों की स्थापना हुई। इनमें सबसे बड़ा और साधनसम्पन्न प्रेस 'नवल किशोर प्रेस', लखनऊ (1858) ई. था जिसने फारसी और देवनागरी दोनों लिपियों में उर्दू दास्तान की बड़ी-बड़ी पुस्तकों के अतिरिक्त संस्कृत पुराणों के हिन्दी-उर्दू अनुवाद भी प्रकाशित किए। चूँकि इस काल का हिन्दू मध्यवर्ग अधिकतर उर्दू-फारसी पढ़ता था। अतः उसे श्रोता से पाठक बनाने में नवल किशोर प्रेस से छपे पुराणों और उर्दू दास्तान की पुस्तकों ने क्रांतिकारी भूमिका अदा की। नवल किशोर प्रेस से ही प्रेरणा प्राप्त कर 1859 ई. से 1870 ई. के बीच बनारस, मथुरा, आगरा, फतेहगढ़ तथा कलकत्ता में दशाधिक हिन्दी मुद्रणालय स्थापित हुए।

4.5.2 पाठक वर्ग के विकास में शिक्षा की भूमिका

जैसा कहा जा चुका है, पाठक वर्ग के निर्माण के लिए शिक्षा मूलभूत आधार है। भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना के पूर्व, शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार, सभी स्तर की हिन्दू और मुस्लिम शिक्षण संस्थाओं का जाल फैला हुआ था। जहाँ तक भाषा का सम्बन्ध है, उत्तर भारत में हिन्दी और फारसी की शिक्षा देने वाले स्कूलों की अधिकता थी। पर ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन ने देशी पद्धति के इन स्कूलों को प्रायः नष्ट कर दिया। कम्पनी शासन ने कभी भी भारतीयों की शिक्षा के प्रति उत्साह नहीं दिखाया। 1823 ई. तक शिक्षा के विकास के सम्बन्ध में कोई भी ठोस कार्य नहीं हुआ। 1822-33 ई. की अवधि में कम्पनी के उत्तरदायी पदाधिकारियों के जोर देने पर शिक्षा के क्षेत्र में कुछ विकास हुआ, पर प्राथमिक शिक्षा या जन शिक्षा की बिल्कुल ही उपेक्षा होती रही। इस कारण जनता में निरक्षरता की मात्रा दिनोदिन बढ़ती ही गई। सरकार की तुलना में ईसाई मिशनरियों ने इस अवधि में जन-शिक्षा के विकास की दिशा में अधिक प्रयत्न किए पर उनका कार्यक्षेत्र मुख्य रूप से अहिन्दी भाषी क्षेत्र था। फिर भी 1813-31 ई. में आगरा, मेरठ, बनारस, आजमगढ़ और जौनपुर में ईसाई मिशनरियों ने अपने प्रचार केन्द्र स्थापित किये और इन स्थानों पर उन्होंने स्कूल खोले। इन धर्मप्रचारकों ने आधुनिक भारतीय भाषाओं को महत्व दिया, क्योंकि ये निम्नस्तरीय समाज के बीच काम करते थे, जो अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त और कोई भाषा नहीं जानता था।

1833 ई. के चार्टर ऐक्ट से भाषा के सम्बन्ध में कम्पनी शासन की नीयत साफ हो गयी। इसका उद्देश्य सरकारी कामकाज और शिक्षा में अंग्रेजी का एकाधिपत्य स्थापित करना था। 1835 के संकल्प में विलियम बेन्टिक ने मेकॉले के सभी सुझाओं को स्वीकार कर लिया और इस प्रकार क्षेत्रीय भाषाओं के विकास का मार्ग अनिश्चित काल के लिए अवरुद्ध हो गया। मैकाले की अध्यक्षता में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार का कार्य तेजी से बढ़ा। यद्यपि इन स्कूलों में देशी भाषा की पढ़ाई की व्यवस्था थी, पर वह नाम मात्र की और केवल दिखाने के लिए थी।

लगभग इसी समय, हिन्दी के दुर्भाग्य से, 1837 ई. में अदालती भाषा सम्बन्धी अधिनियम स्वीकृत हुआ जिससे अदालतों में उर्दू का धीरे-धीरे एकाधिपत्य स्थापित हो गया। मुस्लिम समुदाय का प्रभावशाली वर्ग इस बात की भी कोशिश करता रहा कि स्कूलों के पाठ्यक्रम में हिन्दी को स्थान न मिले। अंग्रेज पदाधिकारियों की साठगाँठ से इसमें उन्हें सफलता भी मिल गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि 1850 ई. तक आते-आते हिन्दी में शिक्षा प्राप्त करने वाले युवकों की संख्या नगण्य हो गयी। इस स्थिति में हिन्दी पाठक-वर्ग की कोई कल्पना करना भी बहुत दूर की बात है।

1854 के 'बुड्स डिस्पैच' के बाद शिक्षा की स्थिति में कुछ परिवर्तन हुआ। इसके बाद शिक्षा प्रसार का कार्य तेजी से बढ़ा पर माध्यमिक विद्यालयों में आधुनिक भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने तथा उनके 'सावधानीपूर्वक अध्ययन' सम्बन्धी 'डिस्पैच' के सुझाव की सरकार ने उपेक्षा कर दी। मिडिल और माध्यमिक स्कूलों में, विषय के रूप में, आधुनिक भारतीय भाषाओं की पढ़ाई नाममात्र को ही होती थी। उसमें भी उर्दू की तुलना में हिन्दी उपेक्षित थी। सरकारी कार्यालयों तथा अदालतों में उर्दू का एकाधिपत्य रहने के कारण अभिभावक अपने बच्चों को उर्दू पढ़ाना ही पसन्द करते थे। इन सब कारणों से 1869 ई. में मिडिल की परीक्षा में उर्दू और हिन्दी विषय लेने वालों का अनुपात चार : एक था। जाहिर है कि 'डिस्पैच' से हिन्दी पाठक वर्ग के निर्माण में कोई सहायता नहीं मिली।

'बुड्स डिस्पैच' के प्रकाशित होने के बाद सरकार ने स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहन देने की सक्रिय नीति अपनायी। इस नीति के परिणामस्वरूप 1871 ई. तक लड़कियों के लिए समस्त देश में 1760 ई. प्राथमिक और 134 माध्यमिक स्कूल खुले। इन स्कूलों में पढ़ाने के लिए नये ढंग की पुस्तकें लिखी गयीं। पं. गौरीदत्त रचित 'देवरानी जेठानी की कहानी' (1870) ई. एक ऐसी ही पुस्तक थी, जिसे हिन्दी का पहला उपन्यास होने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ।

4.5.3 अदालती भाषा के रूप में हिन्दी

शिक्षण संस्थाओं में ही नहीं, सरकारी कार्यालयों और अदालतों में भी हिन्दी उपेक्षित थी। दरअसल कम्पनी शासन को राजकीय भाषा के रूप में फारसी और उर्दू की ही विरासत प्राप्त हुई थी। 1836 ई. तक फारसी ही कम्पनी शासन की राजभाषा रही। मुगल शासन के अन्तिम दिनों में शासन की लिखित भाषा के रूप में फारसी का और बोलचाल की भाषा के रूप में उर्दू का प्रयोग होता था। इसे ही जॉन गिलकाइस्ट 'हिन्दुस्तानी' कहते थे और अंग्रेज पदाधिकारियों के लिए इसका ज्ञान जरूरी समझा गया था।

मुगल शासन में, विशेष कर उसके अन्तिम दिनों में, प्रशासन से जुड़े मुसलमानों और हिन्दुओं के बीच 'हिन्दुस्तानी' या उर्दू का खूब प्रचार था, पर शेष जनता, जिसकी संख्या निश्चित ही बहुत अधिक थी, हिन्दी परिवार की विभिन्न भाषाएँ और बोलियाँ बोलती थी। शासनकार्य से सम्बन्धित न होने के कारण हिन्दी और हिन्दुस्तानी दोनों में लिखित गद्य का अपेक्षित विकास नहीं हो पाया था, पर बोलचाल की भाषा के रूप में शहरों और व्यापार-मंडियों में मौखिक गद्य का विकास हो चुका था।

कम्पनी शासन ने राजनीतिक कारणों से 'हिन्दुस्तानी' या उर्दू को ही अधिक महत्त्व दिया। 21 दिसम्बर, 1798 ई. को सरकारी सूचना द्वारा यह घोषणा की गयी थी कि 1 जनवरी, 1801 के बाद भारतीय भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किए बिना तथा तत्सम्बन्धी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए बिना सिविल सर्विस का कोई भी कर्मचारी किसी भी पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता। पर कम्पनी के शासक समझते थे कि बिहार तथा बनारस की सामान्य जनता की भाषा हिन्दुस्तानी या उर्दू थी। भाषा सम्बन्धी यह भ्रम बहुत दिनों तक अंग्रेज अधिकारियों के मन में बना रहा। 1800 ई. में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई, जिसमें देश की कई भाषाओं के साथ 'हिन्दुस्तानी' के अध्ययन के लिए प्रोफेसर नियुक्त करने का निश्चय किया गया। पर कॉलेज में 'हिन्दी' का अध्यापन आवश्यक नहीं समझा गया। आरम्भ में लल्लूलालजी भी, जो 'हिन्दी मुंशी' थे, रेख्ता या हिन्दुस्तानी में ही ग्रन्थों के अनुवाद करते थे।

धीरे-धीरे गिलक्राइस्ट तथा कम्पनी के अधिकारियों को इस बात का बोध होने लगा कि 'हिन्दुस्तानी' या 'रेख्ता' बिहार तथा 'अपर प्रोविन्सेज' के आम लोगों की भाषा नहीं है। पर 1815 ई. तक कॉलेज में गिलक्राइस्ट की भाषा-नीति का ही अनुकरण होता रहा। बाद में विलियम प्राइस ने कॉलेज के पाठ्यक्रम में हिन्दी को स्थान दिलाने में सफलता प्राप्त की। पर उसी समय कॉलेज का अस्तित्व संकटग्रस्त हो गया और 1854 ई. में वह बिलकुल ही बन्द कर दिया गया। फलतः हिन्दी गद्य को फोर्ट विलियम कॉलेज का वह लाभ नहीं मिला जो उर्दू और बँगला को प्राप्त हुआ।

जहाँ तक दफ्तरों की भाषा का प्रश्न है, 1836 ई. में फारसी के स्थान पर अंग्रेजी सरकारी भाषा घोषित की गयी पर साथ ही यह आदेश भी निकाला गया कि सभी अदालती काम देश की भाषाओं में हुआ करें। 1837 ई. में अदालती भाषा सम्बन्धी अधिनियम लागू होने पर हिन्दी, हिन्दी क्षेत्र की अदालती भाषा स्वीकृत की गयी, पर मुसलमानों तथा हिन्दू वकीलों और मुंशियों के निहित स्वार्थ तथा सरकार की उदासीनता के कारण बिहार तथा अपर प्रोविन्सेज की अदालतों में उर्दू का एकाधिपत्य कायम हो गया। इसके पहले कम से कम नागरी लिपि का प्रयोग सरकारी कामों में होता था। पर इस अधिनियम के लागू होने के बाद अदालतों में नागरी लिपि बिलकुल ही उपेक्षित होने लगी। सन् 1837 ई. के बाद हिन्दुस्तानी या उर्दू भाषा ने जो रूप ग्रहण किया उसमें अरबी-फारसी शब्दों का और भी बाहुल्य हो गया। फारसीदाँ कर्मचारी जिस हिन्दुस्तानी का प्रयोग करते थे उस पर फारसी शब्दावली, मुहावरों और शैली का रंग बहुत ज्यादा होता था। इस पर अंकुश लगाने के लिए सरकार की तरफ से भाषा सम्बन्धी संशोधन के आदेश आते रहते थे, पर उनका कार्यान्वयन नहीं हो पाता था। 1837 ई. के पूर्व 'हिन्दुस्तानी' के लिए नागरी लिपि का भी प्रयोग होता था। पर 1850 ई. के लगभग 'हिन्दुस्तानी' केवल फारसी लिपि में लिखी जाने लगी। लगभग 1850 ई. तक अदालतों और सरकारी कार्यालयों में उर्दू का ही आधिपत्य बना रहा। सातवें दशक में हिन्दी जनता का नागरी लिपि विषयक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। पंजाब में बाबू नवीनचन्द्र राय, बिहार में भूदेव मुखोपाध्याय, उत्तर प्रदेश में शिवप्रसाद सितारेहिन्द आदि के नेतृत्व में यह आन्दोलन प्रबल हुआ जिसका समर्थन एफ. एस. ग्राउस, सैयद अब्दुल्ला, हेनरी पिकॉट आदि ने भी किया। पर इस सबका हिन्दी पाठक वर्ग के निर्माण पर प्रभाव बाद में ही चल कर दिखाई दिया।

4.5.4 हिन्दी समाचारपत्र और पाठक वर्ग

उन्नीसवीं शताब्दी में उत्तरी भारत के आम जन की शैक्षिक-आर्थिक स्थिति को देखते हुए पाठक वर्ग की कल्पना करना कठिन है। इस बीच हिन्दी में जो समाचारपत्र प्रकाशित हुए वे बहुत अल्पायु होते थे। हिन्दी का पहला समाचारपत्र 'उदन्त मार्तण्ड' पाठकों के अभाव में केवल डेढ़ वर्ष चल पाया। इसके सम्पादक पं. जुगुल किशोर शुक्ल को इसे निकालने के लिए घोर आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। 'उदन्त मार्तण्ड' के बाद 'बंगदूत' (1829) प्रकाशित होना शुरू हुआ पर उसकी भी 11-12 संख्याएँ ही प्रकाशित हो पायीं। इसके बाद 1845 ई. तक हिन्दी में कोई समाचारपत्र प्रकाशित नहीं हुआ। सन् 1845 ई. में शिवप्रसाद (सितारेहिन्द) के संरक्षण में 'बनारस अखबार', 1846 में कलकत्ता से 'मार्तण्ड या इंडियन सन' और 'ज्ञानदीप', 1848 में इन्दौर से 'मालवा अखबार', 1849 में कलकत्ता से 'जगदीपक भास्कर' आदि हिन्दी समाचारपत्र स्वतन्त्र रूप से अथवा अन्य कई भाषाओं के साथ प्रकाशित हुए, पर इनमें से कोई भी अधिक दिनों तक नहीं चल सका। इनकी तुलना में उर्दू पत्रों की स्थिति बेहतर थी जिससे यह अनुमान करना निराधार न होगा कि उर्दू पाठक वर्ग, जिसमें हिन्दू-मुसलमान दोनों शामिल थे, हिन्दी की तुलना में बड़ा था।

सन् 1850 ई. के बाद हिन्दी पत्रों के प्रसार में कुछ तेजी आती दिखाई देती है। अगले बीस वर्षों में 'सामदंड मार्तण्ड', 'प्रजाहितैषी', 'धर्म प्रकाश', 'तत्त्वबोधिनी पत्रिका', 'सत्यदीपक' आदि हिन्दी पत्र प्रकाशित हुए। इस अवधि में 'सुधाकर', 'बुद्धिप्रकाश', 'पयामे आजादी', 'लोकमित्र' आदि पत्र भी निकले जो नागरी लिपि में छपते थे, पर जिनकी भाषा 'हिन्दुस्तानी' थी। 1852-67 के बीच प्रकाशित मजहरुलसरकार, 'ग्वालियरगजेट', 'सर्वहितकारक', 'सूरजप्रकाश', 'भारतखंडामृत', 'ज्ञानप्रदायिनीपत्रिक', 'रतन प्रकाश', 'विद्याविलास' आदि हिन्दी-उर्दू के द्विभाषिक पत्र थे। 'समाचार सुधावर्षण'(1854) हिन्दी का पहला दैनिक पत्र था जो हिन्दी और बँगला में प्रकाशित होता था।

इन पत्रों में भारतेन्दु बाबू द्वारा प्रकाशित 'कविवचनसुधा' (1867) का विशेष महत्त्व है। इसके बारे में अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने लिखा है कि "यद्यपि हिन्दी भाषा के प्रेमी उस समय बहुत कम थे, तो भी हरिश्चन्द्र के ललित लेखों ने लोगों के जी में ऐसी जगह कर ली थी कि कवि वचन सुधा के हर नम्बर के लिए लोगों को टकटकी लगाए रहना पड़ता था। इससे यह अनुमान करना असंगत न होगा कि हिन्दी के पाठकों की संख्या में थोड़ी बहुत वृद्धि हो रही थी। कुछ बाद में चलकर हिन्दी में 'बिहार बन्धु', 'हिन्दी प्रदीप', 'सारसुधानिधि', 'ब्राह्मण' आदि साहित्यिक पत्र प्रकाशित होने शुरू हुए जिन्होंने हिन्दी पाठक-वर्ग के विकास में योग दिया। पर पाठक-वर्ग के विकास में सर्वाधिक योगदान देवकीनन्दन खत्री द्वारा प्रकाशित 'साहित्य लहरी' तथा गोपालराम गहमरी और किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा प्रकाशित क्रमशः 'जासूस' और 'उपन्यास' आदि पत्रिकाओं ने किया, जिनमें तिलस्मी, जासूसी और रूमानी कथाएँ प्रकाशित होती थीं। बीसवीं शताब्दी में प्रकाशित 'सरस्वती', 'छत्तीसगढ़ मित्र', 'सुदर्शन', 'वैष्णोपकारक', 'इन्दु', 'मर्यादा' आदि मासिक पत्रिकाओं का हिन्दी कहानी के विकास में अभूतपूर्व योगदान है।

4.5.5 उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दी कथा-पुस्तकों का प्रकाशन

नागरी लिपि में जिन प्रारम्भिक कथा-पुस्तकों के प्रकाशन का पता चलता है, उनमें 'बैताल पचीसी', 'सिंहासनबत्तीसी', 'प्रेम सागर', 'राजनीति और चन्द्रावती' वा नासिकेतोपाख्यान उल्लेखनीय हैं। इन कथा-पुस्तकों की भाषा की पहचान के सम्बन्ध में थोड़ा बहुत मतभेद है, पर मोटामोटी रूप से उसे हिन्दी मानने में कोई विरोध नहीं है। ध्यान देने की बात है कि ये कथा-पुस्तकें सामान्य कथा-प्रेमी पाठकों के लिए नहीं—ऐसे पाठक उस समय थे भी नहीं—बल्कि हिन्दी सीखनेवाले अंग्रेज पदाधिकारियों के लिए मुद्रित करायी गयी थीं, जिनका मूल्य समकालीन हिन्दुस्तानियों की क्रयशक्ति को देखते हुए बहुत ज्यादा था। सिंहासन बत्तीसी का मूल्य प्रति पुस्तक सोलह रुपये और 'बैताल पचीसी' का मूल्य प्रति पुस्तक तेरह रुपये रखा गया था, जो उस जमाने में बहुत बड़ी रकम थी। ये पुस्तकें सरकार द्वारा खरीदी जाती थीं और हिन्दी सीखने वाले सिविल सर्विस के कर्मचारियों को उपलब्ध करायी जाती थीं। यह स्थिति लगभग 1850 ई. तक बनी रही। सामान्य पाठकों को ध्यान में रख कर 'बैताल-पचीसी' का पहला मुद्रण सम्भवतः 1839 में हुआ था। 'सिंहासन बत्तीसी' के विभिन्न संस्करणों के प्रकाशन काल से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसे 1840 ई. के बाद पाठकों में विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई। 1840-70 ई. की अवधि में 'सिंहासन बत्तीसी' के कम से कम तेरह और 1870-80 के बीच कम से कम चौदह संस्करण प्रकाशित हुए। बैताल पचीसी को भी 1840 के बाद ही सामान्य पाठकों के बीच लोकप्रियता प्राप्त हुई। 1840 और 1870 के बीच इसके कम से कम इक्कीस संस्करण उपलब्ध होते हैं, जबकि इसके पूर्व इसके केवल दो ही संस्करण प्रकाशित हुए थे।

हिन्दी की एक बहुत ही उल्लेखनीय कथा पुस्तक सैयद इंशा अल्ला खाँ रचित 'रानी केतकी की कहानी' है, जो लिखी तो 1803 ई. के आसपास गयी थी, पर प्रथम बार मुद्रित हुई 1847 ई. के 'बहुत दिन पहिले' किसी पं. हरीराम द्वारा। यह सूचना इसके दिसम्बर, 1846 के द्वितीय मुद्रण के अन्त में दी गयी है। इस सूचना में यह भी बताया गया है कि "बहुत लोगों को ठेठ हिन्दी बोली में इन दिनों कहानी पढ़ने की चाह रहती है।" इससे यह अनुमान करना संगत है कि 1850 ई. तक हिन्दी पाठक-वर्ग के निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी। 1850 के बाद हिन्दुस्तानी समाचारपत्रों की संख्या में वृद्धि से भी इसकी पुष्टि होती है। 1850-1880 की अवधि में 'रानी केतकी की कहानी' के हिन्दी पाठकों में लोकप्रिय होने के अन्य प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं।

'रानी केतकी की कहानी' यद्यपि हिन्दी की पहली मौलिक, लिखित और मुद्रित गद्य कथा है, पर यह आधुनिक अर्थ में न 'उपन्यास' है, न 'कहानी'। यह मध्यकालीन सूफी प्रेमाख्यानों की पद्धति पर रचित गद्य कथा है, जिसमें अतिलौकिक तत्त्वों, फारसी कथानक रूढ़ियों तथा अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों से भरी एक प्रेम कहानी है। कथा के बीच बीच में सूफी प्रेमाख्यानों की शैली पर नायिका के नख-शिख सौन्दर्य तथा वैवाहिक तैयारियों का अतिशयोक्तिपूर्ण और वस्तुपरिगणनात्मक वर्णन मिलता है। समकालीन जीवन के यथार्थ से, जो उपन्यास/कहानी की प्रथम पहचान है, इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। रानी केतकी की कहानी (1803) से लेकर 1869 ई. तक हिन्दी में कोई दूसरी मौलिक गद्य कथा नहीं लिखी गयी। फोर्ट विलियम कॉलेज से प्रकाशित सभी गद्य कथा पुस्तकें—बैताल पचीसी, सिंहासन बत्तीसी, प्रेम सागर आदि— अनुवाद थीं।

प्रेम सागर का मुद्रण भी पहले पाठ्य-पुस्तक के रूप में ही हुआ था और उसकी कीमत तेरह रुपये रखी गयी थी। 1850 ई. तक 'प्रेम-सागर' सामान्य जनता के बीच नहीं पहुँचा था। पर बाद में, विशेष रूप से 1869 ई. के बाद, कलकत्ता, बम्बई, पटना, दिल्ली, मेरठ, आगरा, प्रयाग, काशी आदि स्थानों से इसके अनेक संस्करण सामान्य पाठकों की माँग पर प्रकाशित हुए।

सामान्य पाठकों के लिए अनूदित कथापुस्तकों के प्रकाशन का प्रचलन भी 1840 ई. के लगभग आरम्भ हुआ। 1838-59 ई. की अवधि में किस्सा हातिमताई, कथासार, मनोरंजन इतिहास, किस्सा चहारदरवेश, सूरजपुर की कहानी, धर्मसिंह का वृत्तान्त, वीर सिंह का वृत्तान्त, वामा मनरंजन, शुक बहत्तरी, लड़कों की कहानी आदि कथा पुस्तकें प्रकाशित हुईं और तत्कालीन पाठकों के बीच लोकप्रिय भी हुईं। 1860 ई. में डेनियल डीफो कृत रॉबिन्सन क्रूसे का पं. बदरीलाल कृत राबिन्सन क्रूसे का इतिहास प्रकाशित हुआ जो हिन्दी का पहला अनूदित उपन्यास कहा जा सकता है। यह अनुवाद अंग्रेजी से नहीं, बल्कि बँगला से किया गया था और हिन्दी पाठकों के बीच पर्याप्त लोकप्रिय भी हुआ था। सन् 1867 ई. में जॉन बन्यन कृत 'पिल्ग्रिम्स प्रोग्रेस' का 'यात्रा स्वप्नोदय' शीर्षक अनुवाद प्रकाशित हुआ। यह अनुवाद ईसाई पादरियों द्वारा धर्मप्रचारार्थ प्रस्तुत किया गया था और इसके कई संस्करण हुए थे। 1868 ई. में उर्दू से गुलबकावली का अनुवाद प्रकाशित हुआ, जो बाद में हिन्दी पाठकों में बहुत लोकप्रिय हुआ।

1861-70 के दशक में नल प्रसंग, नया काशीखंड, राजदूतों की कथा, फूलमणि और करुणा का वृत्तान्त, शनैश्चर जी की कथा, सिकन्दरशाह पातशाह के शहजादे रमनशाह का किस्सा, प्रह्लाद चरित, बुद्धि फलोदय, कृष्ण जन्म खंड, हिन्दी सलेक्शन्स, रामाश्वमेध, तीन देवों की कहानी आदि अनूदित कथापुस्तकें प्रकाशित हुईं। इसी झाड़झंखाड़ के बीच 1870 ई. में 'देवरानी जेठानी की कहानी' (पं गौरीदत्त) के रूप में एक नया फूल खिला,

जो हिन्दी उपन्यास का आरम्भ बिन्दु सिद्ध हुआ। ध्यान रखें कि शीर्षक में 'कहानी' शब्द होने पर भी यह आधुनिक अर्थ में 'कहानी' नहीं है।

'देवरानी-जेठानी की कहानी' की रचना 'उपन्यास' के रूप में नहीं, बल्कि बालिकाओं के लिए उपयोगी पाठ्य-पुस्तक के रूप में हुई थी। अब तक हिन्दी क्षेत्र का मध्यवर्गीय पाठक इतना सक्षम नहीं हो पाया था, न ही हिन्दी का लेखक इतना सक्षम और सजग था, कि अंग्रेजी और बँगला से प्रेरणा ग्रहण कर उपन्यास की रचना करता। सरकारी सहायता से 'देवरानी-ठानी की कहानी' का लेखन और मुद्रण हुआ। बाद में इसी तरह की दो और पुस्तकें 'वामा शिक्षक' (1872) और 'भाग्यवती' (1877) लिखी गयीं। इनका मकसद था स्त्री-शिक्षा का विकास और आदर्श स्त्री-चरित्र की प्रस्तुति। स्त्री-उद्धार भारतीय नवजागरण का प्रमुख मुद्दा था जिसकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति इन कथा पुस्तकों में हुई। संयोगवश यही इनके उपन्यास होने की पहचान बन गयी। मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण तो इनमें आनुसंगिक रूप में ही हुआ है। वस्तुतः इन रचनाओं के समय मध्यवर्गीय हिन्दी लेखक और पाठक वर्ग अभी अपनी निर्माण की प्रक्रिया में ही था। लेखकों का एक वर्ग बाबू हरिश्चन्द्र के नेतृत्व में निर्मित हो रहा था ; राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर राष्ट्रभाषा के रूप में 'निज भाषा' की उन्नति का जी तोड़ प्रयास चल रहा था। इन लेखकों के सपने के भारत को एक समृद्ध गद्य-भाषा की आवश्यकता थी, जो खड़ी बोली हिन्दी के रूप में ही सम्भव थी। अतः बाबू हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगियों को निर्णय लेने में विलम्ब नहीं हुआ और उन्होंने खड़ी बोली गद्य को समृद्ध करने का बीड़ा उठा लिया। जब भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने पहली बार (1875) उपन्यास पद का प्रयोग किया या 'एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जगबीती' लिखने का प्रयोग किया उस समय उन्हें कदाचित् इस बात का ज्ञान नहीं था कि 'देवरानी जेठानी की कहानी' के रूप में उपन्यास का जन्म हो चुका है। भारतेन्दु के समय में ही, उनके सहयोगी बालकृष्ण भट्ट ने सायास रूप में उपन्यास लेखन का प्रयास आरम्भ किया (1878) यद्यपि तब भी उपन्यास के लिए जरूरी पाठक-वर्ग का निर्माण नहीं हो पाया था। भारतेन्दु काल के लेखकों ने मध्यवर्गीय पाठकों की माँग पर नहीं, बल्कि 'देशहित' से प्रेरित होकर, हिन्दी को समृद्ध बनाने के लिए, उपन्यास लिखे। इनमें से कई तो तुरन्त (या बाद में भी) प्रकाशित भी नहीं हो सके और जो प्रकाशित हुए उन्हें लेने वाला कोई नहीं था। अतः हिन्दी उपन्यास के उदय का सम्बन्ध मध्य वर्ग से न के बराबर ही माना जा सकता है।

4.6 कहानी के विकास में पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका

'छोटी कहानी' के विकास के साथ पत्र-पत्रिकाओं का सम्बन्ध प्रायः अनिवार्य रूप से जुड़ा है। अमेरिका में छोटी कहानियाँ अधिकतर पहले पत्रिकाओं और समाचारपत्रों में ही प्रकाशित हुईं। इस तथ्य ने ब्रेट होर्ट, किप्लिंग, मार्क ट्वेन आदि की कहानियों में पत्रकारिता सुलभ स्थानीय चित्रण को प्रोत्साहित किया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 1891-95 में अपनी लगभग 40 कहानियाँ स्वयं द्वारा सम्पादित 'साधना' नामक मासिक पत्र में प्रकाशित की थीं। हिन्दी में शुरु में ऐसा नहीं हुआ। भारतेन्दु युग की साहित्यिक पत्रिकाओं में, जो प्रायः लेखकों द्वारा ही साहित्य-प्रेम की प्रेरणा से निकाली गयी थीं, धारावाहिक रूप में 'उपन्यास' का प्रकाशन तो होता था, पर स्वतन्त्र और स्वयं में पूर्ण 'उपाख्यान' जैसी रचनाओं के प्रकाशन का कोई प्रयास नहीं दिखाई पड़ता। 1891-1900 के दशक में प्रकाशित होने वाली प्रमुख व्यावसायिक पत्रिकाओं, 'हिन्दी बंगवासी' (बालमुकुन्द गुप्त), 'साहित्य लहरी' (देवकीनन्दन खत्री), 'जासूस' (गोपाल राम गहमरी), 'उपन्यास' (किशोरीलाल गोस्वामी) आदि में भी बड़े आकार की कथाएँ ही 'उपन्यास' के नाम पर धारावाहिक रूप में प्रकाशित हो रही थीं।

आकार में 'छोटी' कथा का, तनिक बड़े पैमाने पर, प्रकाशन पहली बार 'सरस्वती' से ही शुरू हुआ। 'सरस्वती' हिन्दी की एक व्यावसायिक प्रतिष्ठान से निकलने वाली पहली साहित्यिक पत्रिका थी, जिसका लक्ष्य धन कमाना भले न हो, आर्थिक नुकसान उठाना भी न था। ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए 'कथा' से बढ़कर कोई और माध्यम नहीं हो सकता, इसकी जानकारी इंडियन प्रेस के बंगाली मालिक को भलीभाँति थी। बँगला में 'प्रवासी', 'साधना' आदि पत्रिकाओं की सफलता का रहस्य वे जानते थे। हिन्दी में भी देवकीनन्दन खत्री, गोपाल राम गहमरी, किशोरीलाल गोस्वामी आदि के 'उपन्यासों' के कारण एक कथाप्रेमी पाठक-वर्ग का उदय हो रहा था, इसकी जानकारी भी उन्हें थी। 'सरस्वती' इन्हीं सब परिस्थितियों की उपज थी। यही कारण था कि 'सरस्वती' के पहले ही अंक से 'आख्यायिका' नाम से छोटी कथाओं का प्रकाशन आरम्भ हो गया। यह भी एक रोचक तथ्य है कि 'उपन्यास' की तरह इन छोटी कथाओं के लिए बँगला में प्रचलित पद 'छोटो गल्प' या 'गल्प' पद नहीं अपनाया गया, जबकि पत्रिका के स्वामी बंगाली थे। 'आख्यायिका' पद के साथ एक सुविधा यह थी कि उसका परम्परागत सम्बन्ध 'ख्यात कथा' से था, जिसकी रचना आसान भी थी और शासन की टेढ़ी नजर से बचने का परदा भी। 'सरस्वती' के पहले ही अंक में प्रकाशित गोस्वामी जी की 'इन्दुमती' और 1902 में प्रकाशित 'गुलबहार' 'ख्यात' कथा पर ही आधारित 'आख्यायिकाएँ' हैं।

1903 में 'सरस्वती' के सम्पादक पद पर नियुक्त महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रकाशित कथाएँ भी 'ख्यात' की कोटि में ही आती हैं। इन 'ख्यात' कथाओं के साथ-साथ 'कल्पनाप्रसूत' कथाएँ भी 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगीं। 1900 ई. में ही 'सरस्वती' में प्रकाशित केशव प्रसाद सिंह कृत 'चन्द्रलोक की यात्रा', 'कश्मीर यात्रा' और 'आपत्तियों का पर्वत' नामक कथाएँ कल्पनाप्रसूत ही थीं, यद्यपि वैज्ञानिक चेतना और यात्रा पर आधारित तथा 'राजनीतिक स्वतन्त्रता' और समाज-सुधार के उल्लेख के कारण उनमें आधुनिक छोटी कहानी की झलक अनायास ही आ गयी है। माधव प्रसाद मिश्र कृत 'पुरोहित का आत्मत्याग', माधवराव सप्रे कृत 'एक टोकरी भर मिट्टी', मास्टर भगवान दास कृत 'प्लेग की चुड़ैल', गिरिजादत्त वाजपेयी कृत 'पंडित और पंडितानी', रामचन्द्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय', 'बंगमहिला' राजेन्द्रबाला घोष कृत 'कुम्भ में छोटी बहू' और 'दुलाई वाली' आदि कहानियाँ भी 'कल्पनाप्रसूत' की कोटि में ही आएँगीं। उर्दू की कथा-परम्परा से आने वाले नवाब राय ने भी 'ख्यात' और 'कल्पनाप्रसूत' दोनों ही प्रकार की कहानियाँ लिखीं। पर नाम इनका 'आख्यायिका' ही चलता रहा, केवल नवाबराय ने अपनी कहानियों के लिए 'कहानी' पद का प्रयोग किया। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में, हिन्दी में, आधुनिक कहानी, विकास के प्रथम चरण के रूप में अस्तित्व में आ गयी।

4.6.2 हिन्दी में 'छोटी कहानी' का उद्भव और प्रारम्भिक रूप

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हिन्दी क्षेत्र के लेखकों का जो थोड़ा बहुत सम्बन्ध यूरोपीय 'छोटी कहानी' से बना, वह बँगला और अंग्रेजी के माध्यम से ही। पहले 'सरस्वती' में और बाद में 'इन्दु', 'मर्यादा', 'माधुरी', 'विशाल भारत' आदि पत्रिकाओं में बँगला 'गल्पों' के अनुवाद और रूपान्तर प्रकाशित होते रहे। अंग्रेजी के माध्यम से तोल्सतोय, गोगोल, मोपासाँ, चेखव, ओ' हेनरी आदि की कतिपय प्रसिद्ध कहानियों के अनुवाद भी दूसरे-तीसरे दशकों की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। इन सबसे हिन्दी के लेखक प्रेरित-प्रभावित

हुए। पर हिन्दी लेखकों को कहानी लिखने की प्रेरणा भले ही अंग्रेजी या बँगला से प्राप्त हुई हो, उनके सामने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी की कथा-आख्यान परम्परा का विशाल रिक्थ भी था।

संस्कृत से आधुनिक हिन्दी कहानी के विकास का कोई क्रमबद्ध इतिहास नहीं है। खड़ी बोली आधारित हिन्दी गद्य का इतिहास भी बहुत पुराना और समृद्ध नहीं कहा जा सकता। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में मुद्रण यन्त्रों के बढ़ते उपयोग के फलस्वरूप परम्परा से चली आती मौखिक कथा को मुद्रित होने का लाभ मिला और पहली मौलिक गद्य कथा 'रानी केतकी की कहानी', जिसकी रचना 1803 के आसपास ही हो चुकी थी, 1841 के दशक में प्रथम बार मुद्रित हुई। इस बीच बहुत सी संस्कृत और फारसी परम्परा की कथाएँ भी अनूदित होकर हिन्दी में छपीं। पर 1900 के पूर्व, शाब्दिक अर्थ में भी, लघु कथाओं के प्रकाशन की कोई उल्लेखनीय परम्परा नहीं थी। 'रानी केतकी की कहानी' के शीर्षक में 'कहानी' पद होने पर भी यह आधुनिक 'कहानी' नहीं है, क्योंकि इसमें 'घटनाएँ' भी हैं और समयानुक्रम में निबद्ध घटनाओं की श्रृंखला भी। इंशा की दूसरी गद्य कथा 'सिल्के गौहर' भी 'कहानी' के रूप में स्वीकार नहीं की जा सकती। पूरी उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में मौलिक गद्य कथा का कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। डा. सादिक के अनुसार उर्दू में एक पृथक् गद्य-विधा के रूप में कहानी के प्रथम चिह्न उन्नीसवीं शताब्दी के पहले दशक में फोर्ट विलियम कॉलेज से सम्बद्ध लेखकों द्वारा तैयार की गयी पुस्तकों में मिलते हैं। इसके समर्थन में उन्होंने हैदर बख्श हैदरी की प्रो इबादत बरेलवी द्वारा संकलित-सम्पादित 174 कहानियों के संकलन और 'भूमिका' में व्यक्त उनके इस विचार का उल्लेख किया है कि "इन कहानियों में 'लघु कथा अथवा शार्ट स्टोरी की कलात्मक झलकियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं।" पर स्वयं सादिक प्रो. हैदरी के इस विचार से पूरा इत्फाक नहीं रखते। कम्पनी सरकार या ईसाई धर्मप्रचारकों द्वारा स्थापित प्राइमरी स्कूलों की पाठ्य-पुस्तकों में शामिल करने के उद्देश्य से लिखित कुछ लघु उपदेश-कथाओं के उदाहरण उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में मिलने लगते हैं, पर उन्हें भी 'कहानी' के विकास से नहीं जोड़ा जा सकता। श्रीलाल लिखित धर्म सिंह का वृत्तान्त प्र.का. लगभग 1850 और सूरजपुर की कहानी प्र.का.1853, राजा शिव प्रसाद रचित वीर सिंह का वृत्तान्त प्र.का.1855, वामा मनरंजन प्र.का.1856 और लड़कों की कहानी (प्र.का. लगभग 1860, पं. कृष्णदत्त लिखित बुद्धि फलोदय प्र.का. लगभग 1860 आदि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। वस्तुतः हिन्दी कहानी का आरम्भिक रूप बीसवीं सदी के प्रथम दशक कहानियों में ही देखा जा सकता है। 'इन्दुमती', 'गुलबहार', 'चन्द्रलोक की यात्रा', 'आपत्तियों का पर्वत', 'एक टोकरी भर मिट्टी', 'प्लेग की चुड़ैल', 'ग्यारह वर्ष का समय' आदि ऐसी ही कहानियाँ थीं।

4.7 सारांश

'हिन्दी कहानी' की परम्परा संस्कृत-प्राकृत कथा-साहित्य से जुड़ी हुई है। सातवीं सदी तक यह परम्परा अविच्छिन्न दिखायी पड़ती है। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' ने संस्कृत गद्य कथा को एक नया रूप दिया था। उसके बाद दंडी ने अपनी रचना 'दशकुमार चरित' द्वारा इस परम्परा को समृद्ध किया। पर बाणभट्ट और दंडी के बाद कथा-रचना की यह परम्परा आगे नहीं बढ़ पायी। उसके बाद, मध्यकाल में, इस परम्परा का विकास प्रायः क्षीण हो गया। 19वीं शताब्दी में, राजनीतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप हिन्दी (खड़ी बोली) गद्य और उसके साथ ही मुद्रण यन्त्र का प्रादुर्भाव हुआ। कथा-साहित्य के विकास के लिए गद्य और उसके साथ साथ पाठक-वर्ग का विकास आवश्यक था।

हिन्दी गद्य और पाठक-वर्ग के निर्माण में मुद्रण-तकनीक के आगमन, शिक्षा के प्रसार, अदालती भाषा के रूप में हिन्दी की स्वीकृति, समकालीन आर्थिक स्थिति, हिन्दी समाचारपत्रों के आगमन आदि की महत्वपूर्ण भूमिका थी। जब 'कथा' गद्य में लिखी जाने लगी तो वह श्रव्य के साथ साथ पाठ्य होने लगी और जब मुद्रणयन्त्र का आगमन हुआ तो 'कथा' श्रव्य कम और पाठ्य अधिक होने लगी। धीरे-धीरे मुद्रण तकनीक के विकास के चलते पुस्तकें सस्ती और आसानी से उपलब्ध होने लगीं और 'कथा' अधिकतर पाठ्य हो चली। शिक्षा के प्रसार, आर्थिक स्थिति की बेहतरी आदि से पाठक-वर्ग का प्रसार होने लगा। पत्र-पत्रिकाएँ निकलने लगीं। भारत में इस प्रकार की परिस्थितियाँ औपनिवेशिक शासन के बाद निर्मित हुईं। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर लगभग आगामी सात दशकों तक हिन्दी पाठक वर्ग के निर्माण की प्रक्रिया बहुत धीमी रही।

आठवें दशक में हिन्दी साहित्य के इतिहास में नवजागरण का परिदृश्य उपस्थित हुआ, जिसके जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगी थे। इस नवजागरण की सबसे महत्वपूर्ण परिघटना हिन्दी में उपन्यास का उद्भव था। आधुनिक विधा के रूप में 'कहानी' का आरम्भ अभी नहीं हुआ था। बँगला में 'छोटो गल्प' के उदय, 'सरस्वती' आदि पत्रिकाओं के पत्रिका के प्रकाशन से हिन्दी 'कहानी' के उद्भव और विकास को गति मिली। जनवरी, 1900 में 'सरस्वती' के प्रथम अंक में ही प्रकाशित हिन्दी की पहली मानी जाने वाली कहानी, किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती', इसी का परिणाम थी। उसके बाद 'आख्यायिका' नाम से लगभग एक दर्जन कहानियाँ हिन्दी की तत्कालीन साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं।

अभ्यास

1. मध्यकाल में 'कथा'-लेखन की परम्परा का उल्लेख करते हुए हिन्दी कहानी के उद्भव के कारणों या परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।
2. हिन्दी कहानी के उद्भव में गद्य के विकास की भूमिका का निरूपण कीजिए।
3. हिन्दी गद्य कथा के विकास में पाठक वर्ग की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
4. हिन्दी गद्य के विकास में मुद्रण तकनीक के आगमन का मूल्यांकन कीजिए।
5. हिन्दी पाठक वर्ग के विकास में स्कूली शिक्षा के योगदान पर विचार कीजिए।
6. हिन्दी गद्य के विकास में अदालतों में हिन्दी के प्रवेश के योगदान का उल्लेख कीजिए।
7. पाठक वर्ग के निर्माण और हिन्दी समाचारपत्रों के आरम्भ के परस्पर सम्बन्ध पर प्रकाश डालिए।
8. हिन्दी कहानी के विकास में पत्रिकाओं की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
9. सरस्वती और अन्य पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी कहानी के विकास का परिचय दीजिए।